महावीर का अर्थशास्त्र

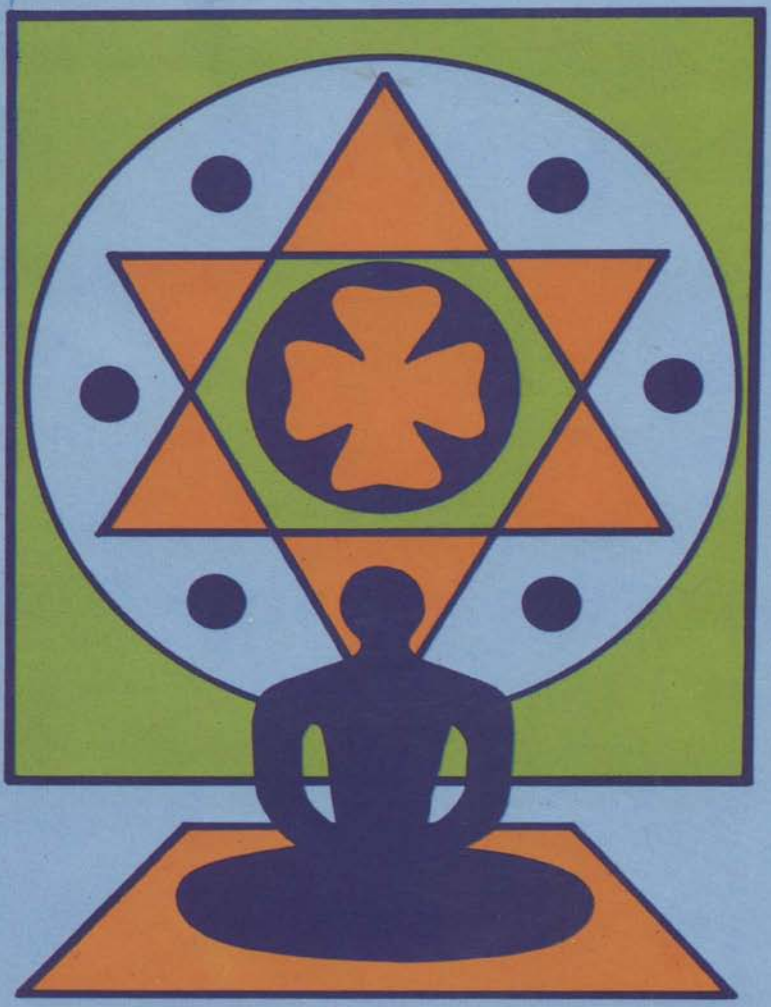

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थशास्त्र आर्थिक समृद्धि का शास्त्र है और अर्थ का सीमाकरण शान्ति का शास्त्र। असीम आकांक्षा और शान्ति में कभी समझौता नहीं होता। मनुष्य के लिए आर्थिक संसाधन भी जरूरी है। शान्ति के मूल पर यदि आर्थिक विकास हो तो परिणामतः अशान्त मनुष्य आर्थिक समृद्धि से सुखानुभूति नहीं कर सकता। वर्तमान की अपेक्षा है—आर्थिक आवश्यकता की संपूर्ति और शान्ति—इन दोनों का समन्वय किया जाए। ऐकान्तिक दृष्टिकोण विश्व की समस्या को समाधान देने में सक्षम नहीं है, इसलिए सापेक्ष दृष्टिकोंण के आधार पर आवश्यकता की संपूर्ति का अथशास्त्र और शान्ति का अर्थशास्त्र—दोनों एक-दूसरे के पूरक हों। संयम, विसर्जन, त्याग, सीमाकरण—ये शब्द आर्थिक संपन्नता के स्वप्नद्रष्टा मनुष्य को प्रिय नहीं हैं। भोग, विलासिता, सुविधा—इन शब्दों में सम्मोहक शक्ति है। जो प्रिय नहीं लगते, वे मानवता के भविष्य के लिए अत्यन्त अनिवार्य हैं। इस अनिवार्यता की अनुभूति ही महावीर और उनके सीमाकरण के सिद्धान्त को अर्थशास्त्र के सन्दर्भ में समझने की प्रेरणा देगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर का अर्थशास्त्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर का अर्थशास्त्र

आचार्य महाप्रज्ञ

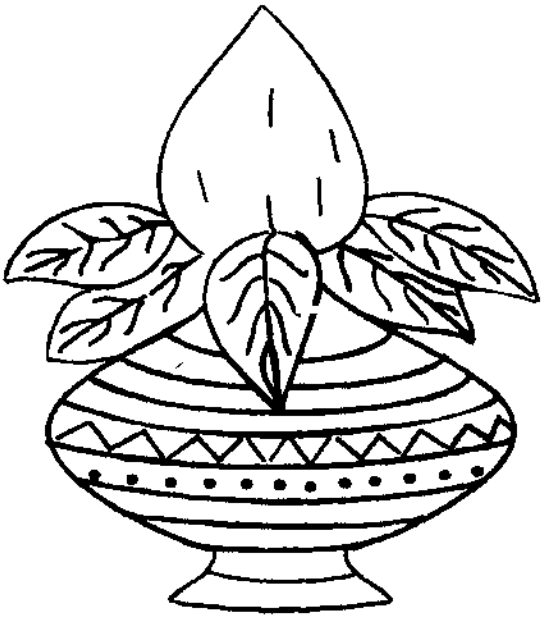

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

© आदर्श साहित्य संघ, नई दिल्ली

महावीर का अर्थशास्त्र

लेखक : आचार्य महाप्रज्ञ
सम्पादक : मुनि धनंजयकुमार
प्रकाशक : कमलेश चतुर्वेदी
प्रबन्धक—आदर्श साहित्य संघ
२१०, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली-११०००२
संस्करण : अगस्त २००७
मूल्य : साठ रुपए
अर्थ-सौजन्य : प्रेक्षा हैल्थ एंड रिसर्च फाउंडेशन,
१६, नेताजी सुभाष रोड़, चौथा माला,
कोलकाता-७००००१
मुद्रक : आर-टेक आफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

MAHAVIR KA ARTHSHASTRA by AcharyaMahapra Rs. 60.00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशीर्वचन

ईस्वी सन् १९८७, अमेरिका का होनोलूलू शहर। हवाई विश्वविद्यालय शान्ति संस्थान एवं डे वोन सा बौद्ध मंदिर के संयुक्त तत्वावधान में संगोष्ठी का आयोजन। संगोष्ठी का विषय था—'बौद्ध परिप्रेक्ष्य में शान्ति।' पन्द्रह देशों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति। हवाई विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डा॰ ग्लेन डी॰ पेज के विशेष आमंत्रण पर हमारे प्रतिनिधियों का एक दल वहां पहुंचा। संगोष्ठी में एक प्रश्न आया कि अपरिग्रह के बारे में महावीर ने कुछ कहा हो, ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता। इस सन्दर्भ में महावीर की क्या अवधारणा रही है? वहाँ उपस्थित विद्वानों में अधिसंख्य बौद्ध विद्वान् थे। संभवतः महावीर के दर्शन से वे पूरे परिचित नहीं थे। उस समय हमारे एक प्रतिनिधि जैन तत्वचर्चा विशारद श्री मोतीलाल एच. रांका खड़े होकर बोले—'महावीर ने अपरिग्रह के बारे में बहुत कुछ कहा है। उनका एक दृष्टिकोण यह रहा है—'असंविभागी न हु तस्स मोक्खो—जो अर्थ का संविभाग नहीं करता, विसर्जन नहीं करता, वह मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता।'

इस एक सूत्र से बौद्ध विद्वान् बहुत संतुष्ट हुए। सौका विश्वविद्यालय टोक्यो (जापान) के जो प्रतिनिधि वहाँ उपस्थित थे, वे हमारे प्रतिनिधि दल को विशेष आग्रह के साथ जापान ले गए और वहाँ अनेक गोष्ठियों में जैन दर्शन के सम्बन्ध में अनेक विचार सुने। मैंने जब से यह बात सुनी, मन में आया कि परिग्रह और अपरिग्रह के विषय में महावीर की अवधारणा पर तुलनात्मक अध्ययन होना चाहिए। इस वर्ष अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवनविज्ञान पर इक्कीस दिवसीय प्रवचनमाला के बाद आचार्य महाप्रज्ञजी से कहा—महावीर के दर्शन पर अर्थशास्त्रीय दृष्टि से भी एक प्रवचनमाला का आयोजन किया जाए।

संसार में अनेक अर्थशास्त्री हैं। वे अपनी दृष्टि से अर्थशास्त्रीय अवधारणाओं को व्यापारी वर्ग और उपभोक्ता वर्ग तक पहुँचा रहे हैं। अर्थ के प्रति लोगों का आकर्षण बढ़ रहा है। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि अर्थ मनुष्य के जीवन से भी अधिक मूल्यवान् बन रहा है। अर्थ का अर्जन, संग्रह संरक्षण और भोग—यह चतुष्टयी सन्ताप का कारण बन रही है। ऐसी स्थिति में महावीर की विचारधारा कुछ अंशों में भी त्राण बन सकी तो एक बड़ी उपलब्धि हो जायेगी। इस दृष्टि से प्रति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्ताह दो-दो प्रवचन के क्रम से चार सप्ताह के प्रवचनों की निष्पत्ति है— महावीर का अर्थशास्त्र।पुस्तक का नाम अटपटा अवश्य है, पर इसमें विवेचित विषय अर्थ-शास्त्रीय अवधारणाओं में मील के पत्थर बन सकेगें, ऐसा विश्वास है।

अर्थशास्त्र की तरह राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र आदि के बारे में महावीर की अवधारणाओं का प्रकाश संसार को मिले, इस ओर भी महाप्रज्ञजी को ध्यान देना है और अपने नए चिन्तन से जिज्ञासु लोगों लाभान्वित करना है।

अध्यात्म साधना केन्द्र
१३ सितम्बर १९९४

गणाधिपति तुलसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुति

जो मनुष्य अप्रामाणिक प्रवृत्तियों से धन का अर्जन करते हैं, वे वैर के साथ अपना अनुबन्ध कर लेते हैं।

धन में मूर्च्छित मनुष्य को धन त्राण नहीं देता।

अंधेरी गुफा में जिसका दीप बुझ गया हो, उसकी भांति अर्थ में आसक्त मनुष्य पार ले जाने वाले मार्ग को देखकर भी नहीं देखता।

महावीर के ये सूत्र संकेत दे रहे हैं—महावीर अर्थशास्त्री नहीं हैं। वे अध्यात्म पुरुष हैं। आत्मा के अस्तित्व को उन्होंने अपना आधार माना है।

अर्थशास्त्र के अध्ययन का मुख्य विषय वस्तुएं हैं। अध्यात्मशास्त्र के अध्ययन का मुख्य विषय आत्मा है। उसका सम्बन्ध अपरिग्रह से है। महावीर अपरिग्रह के महान् प्रवक्ता हैं। उन्होंने स्वयं अपरिग्रह की स्थापना की, आकिंचन्य का जीवन जीया।

गृहस्थी मनुष्य अपरिग्रही नहीं हो सकता, जीवन चलाने के लिए भिक्षाजीवी नहीं हो सकता। उसके लिए महावीर के इच्छापरिमाण—परिग्रह के सीमाकरण का विधान किया। सीमाकरण से अर्थशास्त्र के कुछ सिद्धान्त फलित होते हैं। आकांक्षा और उत्पादन के असीम संवर्धन का सिद्धान्त बहुत आकर्षक है किन्तु वह स्वाभाविक नहीं है और उसके परिणाम भी मनुष्य के हित में नहीं हैं।

अर्थशास्त्र आर्थिक समृद्धि का शास्त्र है और अर्थ का सीमाकरण शान्ति का शास्त्र। असीम आकांक्षा और शान्ति में कभी समझौता नहीं होता। मनुष्य के लिए आर्थिक संसाधन भी जरूरी हैं। शान्ति के मूल्य पर यदि आर्थिक विकास हो तो परिमाणतः अशान्त मनुष्य आर्थिक समृद्धि के सुखानुभूति नहीं कर सकता। वर्तमान की अपेक्षा है—आर्थिक आवश्यकता की संपूर्ति और शान्ति—इन दोनों का समन्वय किया जाए। ऐकान्तिक दृष्टिकोण विश्व की समस्या को समाधान देने में सक्षम नहीं है, इसलिए सापेक्ष दृष्टिकोण के आधार पर आवश्यकता की संपूर्ति का अर्थशास्त्र और शान्ति के अर्थशास्त्र—दोनों एक दूसरे के पूरक हों। संयम, विसर्जन, त्याग, सीमाकरण—ये शब्द आर्थिक संपन्नता के स्वप्नद्रष्टा मनुष्य को प्रिय नहीं है। भोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विलासिता, सुविधा—इन शब्दों में सम्मोहक शक्ति है। जो प्रिय नहीं लगते, वे मानवता के भविष्य के लिए अत्यन्त अनिवार्य हैं। इस अनिवार्यता की अनुभूति की महावीर और उनके सीमाकरण के सिद्धान्त को अर्थशास्त्र के सन्दर्भ में समझने की प्रेरणा देगी।

पूज्य गुरुदेव ने कल्पना की, प्रकल्प और संकल्प किया—'महावीर के अर्थशास्त्र' के कुछ सूत्रों पर चर्चा हो, जो मानसिक तनाव और पर्यावरण की समस्या में उलझे हुए मानस को समाधान दे सके। महापुरुष का संकल्प निर्विकल्प होता है इसलिए वह चरितार्थ हो गया। चार सप्ताह (६ अगस्त से २८ अगस्त ९४) तक प्रति शनि और रविवार को चलने वाला उपक्रम बढ़ती हुई जिज्ञासा और उत्साह के साथ संपन्न हो गया। पाठक के लिए प्रस्तुत है 'महावीर का अर्थशास्त्र।' मुनि धनंजयकुमार ने इसके संपादन में अनवरत श्रम किया। मुनि महेन्द्रकुमारजी ने बड़ी तत्परता के साथ इसका एक परिशिष्ट तैयार किया, जिसमें कुछ आधुनिक विचारकों के विचार बिन्दु संकलित हैं। इसमें मानवता के भविष्य का प्रतिबिम्ब है, यदि बिम्ब अपने प्रतिबिम्ब को पहचान सके।

-आचार्य महाप्रज्ञ

अध्यात्म साधना केन्द्र
नई दिल्ली
११ सितम्बर १९९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

अपरिग्रह का प्रवक्ता निर्ग्रन्थ
क्या रच सकता है अर्थशास्त्र का ग्रन्थ ?
महाप्रज्ञ की कृति 'महावीर का अर्थशास्त्र'
खोल देती है बंद जिज्ञासा-पात्र
उभरता है मन में यह प्रश्न
क्या अपरिग्रह का चिन्तन
दे सकता है परिग्रह का दर्शन ?
समाधान है गहराई में, ऊँचाई में
अवस्थित हूं सतह पर, तराई में
सहसा चेतना के अतल तल को चीरकर
कौंधती है एक विद्युत किरण—
आयुष्मन्
महावीर के ध्वनि प्रकंपन
पकड़ता था चेतना का कण-कण
न केवल मानव
देव दानव
पशु-पक्षी ही नहीं
वृक्ष और वनस्पति भी
सुनते थे
समझते थे
भूलकर वैर-भाव
त्याग अपना विभाव।
महावीर का वचन
शाश्वत सत्य का निर्वचन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न व्यक्ति
न जाति
सबके लिए
जिसमें अध्यात्म शास्त्र भी है
नीतिशास्त्र और समाजशास्त्र भी है
राजनीति शास्त्र और अर्थशास्त्र भी है
प्रश्न है पकड़ने वाली दृष्टि का
संकल्पजा सृष्टि का।
विस्मति का विलय
स्मृति में ग्रन्थ 'भूवलय'
एक पत्र में संदृब्ध
अनगिन भाषा से समृद्ध
जिसमें रसियन और जापानी भी है
फ्रेंच और जर्मनी भी है
कोई भी नहीं है ऐसी लिपि
जिसकी न मिले प्रतिलिपि
केवल चाहिए वह दृष्टि
जो पकड़ सके शब्द-सृष्टि।
महाप्रज्ञ का प्रस्तुत सृजन
मौलिक प्रतिभा का एक और निदर्शन
महावीर की सूत्रात्मा से
महाप्रज्ञ का अर्थात्मा का
साक्षात् मिलन
महावीर की प्रासंगिकता का
महाप्रज्ञ की प्रतिभा से
सजीव चित्रण
जो देता है
नया प्रकाश
प्रबल आश्वास
नया विश्वास।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- महाप्रज्ञ कहते हैं—
  अपरिग्रह के चिन्तन से ही
  निकल सकता है
  परिग्रह का पावन दर्शन
  अहिंसा और शान्ति के अर्थशास्त्र का
  कमनीय अयन
  जिस पर चलकर
  पा सकता है हर पाठक
  शान्ति की वह दिव्य मणि
  जो भौतिकता की चकाचौंध में
  हो गई है आंखों से ओझल।

मुनि धनंजयकुमार

नई दिल्ली
१३ सितम्बर १९९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

१. केन्द्र में कौन— मानव या अर्थ ?	१५
२. विकास की अर्थशास्त्रीय अवधारणा	२६
३. अहिंसा और शान्ति का अर्थशास्त्र	३६
४. व्यक्तिगत स्वामित्व एवं उपभोग का सीमाकरण	४८
५. पर्यावरण और अर्थशास्त्र	५७
६. गरीबी और बेरोजगारी	६७
७. महावीर, मार्क्स, केनिज और गांधी	७६
८. नई अर्थनीति के पेरामीटर	८६
९. धर्म से आजीविका : इच्छा परिमाण	९६
१०. जिज्ञासा : समाधान	१०८
११. महावीर और अर्थशास्त्र	१२३

परिशिष्ट

१. महावीर वाणी : मूल स्रोत	१४१
२. व्रत-दीक्षा	१४६
३. चौदह नियम	१५३
४. अणुव्रत-आचार-संहिता	१५५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केन्द्र में कौन - मानव या अर्थ ?

विश्व की नई व्यवस्था अपेक्षित है। नया समाज, नई अर्थ-व्यवस्था, नई राजनीति की प्रणाली, सब कुछ नया अपेक्षित है। इसलिए कि जो नया-नया चल रहा है, उससे संतोष नहीं है। जो नया करना चाहते हैं वह पुराना भी है। हमारी इस परिवर्तनशील दुनिया में ध्रौव्य, उत्पाद और व्यय एक साथ चलते हैं। ध्रुव है, शाश्वत है और साथ में परिवर्तन भी है। यह अनेकान्त का नियम है। परिवर्तन और शाश्वत—दोनों संयुक्त रूप से चलते हैं इसलिए नया कुछ भी नहीं होता। जो नया होता है, वह भी पुराना बन जाता है। जो पुराना है, उसमें भी खोज करें तो बहुत कुछ नया मिलेगा।

मनुष्य की प्रकृति

भगवान् महावीर ने मनुष्य को व्याख्यायित किया। मनुष्य बाहर से तो एक विशिष्ट आकृति प्रधान और पशु से भिन्न लगता है किन्तु मनुष्य की प्रकृति बहुत से प्राणियों से भिन्न नहीं है। प्रत्येक प्राणी के अन्तस्तल में एक प्रकृति है काम। मनुष्य की प्रकृति में भी काम है। महावीर का वचन है—कामकामे खलु अयं पुरिसे—यह पुरुष कामकामी है। काम उसकी प्रकृति का एक तत्त्व है।

उसकी प्रकृति का दूसरा तत्त्व है—अत्थलोलुए— वह अर्थलोलुप है, अर्थ का आकांक्षी है।

मनुष्य की प्रकृति का तीसरा तत्त्व है—धम्मसद्धा। मनुष्य में धर्म की श्रद्धा है, चरित्र की श्रद्धा है, आस्था है।

मनुष्य की प्रकृति का चौथा तत्त्व है—संवेग। वह मुक्त होना चाहता है।

ये मनुष्य की प्रकृति के चार तत्त्व हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। भारतीय चिन्तन में चार पुरुषार्थ का समन्वय माना गया है; चार पुरुषार्थ को छोड़कर हम मनुष्य की व्याख्या करें तो उसे समग्रता से नहीं समझा जा सकता। उसको समग्रता से समझने के लिए इस पुरुषार्थ चतुष्टयी को समझना जरूरी है।

समन्वित दृष्टिकोण

चाणक्य भारतीय राजनीति और अर्थनीति के एक प्रतीक पुरुष हैं। उन्होंने कई ग्रन्थ लिखे हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। अपने दूसरे प्रसिद्ध ग्रन्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाणक्य सूत्र में वे लिखते हैं—

सुखस्य मूलं धर्मः। धर्मस्य मूलं अर्थः।
अर्थस्य मूलं राज्यः। राज्यस्य मूलं इन्द्रिय-जयः।

सुख का मूल है धर्म। धर्म का मूल है अर्थ। अर्थ का मूल है राज्य और राज्य का मूल है इन्द्रिय-जय।

इन्द्रिय-जय को छोड़कर केवल राज्य और अर्थ की कल्पना चाणक्य नहीं कर सकते। चाणक्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के अमात्य थे और चन्द्रगुप्त भगवान् महावीर के शिष्य। मौर्य साम्राज्य में चन्द्रगुप्त ने कुछ नई व्यवस्थाएं दी थीं और उन व्यवस्थाओं के सूत्रधार थे महामात्य चाणक्य। चाणक्य सूत्र में उन्होंने जिस सत्य का प्रतिपादन किया है, वह एक समन्वित दृष्टिकोण है।

दो प्रणालियां

वर्तमान में दो मुख्य प्रणालियां प्रचलन में हैं—

- कैपिटलिज्म
- कम्युनिज्म।

एक पूंजीवादी प्रणाली है और एक साम्यवादी प्रणाली। दोनों की फिलॉसफी है मैटेरियलिज्म—भौतिकवाद। पूंजीवाद का दर्शन भी भौतिकवाद है और साम्यवाद का दर्शन भी भौतिकवाद है। दोनों में दर्शन का कोई अन्तर नहीं है।

व्रती समाज

महावीर ने एक समाज की कल्पना की थी। उसका नाम हो सकता है व्रती समाज। उसके लिए उन्होंने एक आचार संहिता दी। उसमें से अर्थ-व्यवस्था के बहुत सारे सूत्र फलित होते हैं, अर्थ-व्यवस्था के अनेक सिद्धान्त प्रस्फुटित होते हैं। व्रती समाज की जो परिकल्पना है, उस पर दर्शन की दृष्टि से विचार करें। वह न भौतिकवाद है और न कोई दूसरा अन्य वाद। वह एक समन्वित वाद है, जिसमें भौतिकवाद और अध्यात्मवाद दोनों का समन्वय है। महावीर यथार्थवादी थे। उन्होंने भौतिकवाद को अस्वीकार नहीं किया, पौद्गलिक सुख को अस्वीकार नहीं किया। किन्तु उनमें प्रकृति का भेद अवश्य बतलाया—एक शाश्वत सुख या आन्तरिक सुख है, दूसरा क्षणिक अथवा भौतिक सुख है।

महावीर ने कहा—खणमेत्त सोक्खा बहुकाल दुक्खा—भौतिक सुख क्षणिक होता है, परिणाम में दुःखद होता है। इस अन्तर का प्रतिपादन किया पर यह नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहा—जो भौतिकवाद है या भौतिकवादी दृष्टिकोण है, वह सर्वथा गलत है। यह सचाई है कि हमारा सारा जीवन पौद्गलिक है, पुद्गल के आधार पर चलता है। हम भौतिकवाद से हटकर केवल अध्यात्मवाद के आधार पर जीवनयात्रा को नहीं चला सकते। इसलिए उन्होंने एक समन्वित दृष्टिकोण पर बल दिया। कोरा भौतिकवाद नहीं, कोरा एकांगी दृष्टिकोण नहीं, किन्तु अनेकान्त का दृष्टिकोण, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद—दोनों की समन्विति।

केनिज के विचार

आधुनिक अर्थशास्त्र भौतिकवाद के आधार पर विकसित हुआ है। उसकी कठिनाई यह एकांगी दृष्टिकोण ही है। यदि एकांगी दृष्टिकोण नहीं होता तो वर्तमान में इतनी आर्थिक अपराध की स्थितियां नहीं बनतीं, आर्थिक स्पर्धा नहीं होती, उत्पादन और वितरण में इतनी विषमता पैदा नहीं होती। आधुनिक अर्थशास्त्र के प्रमुख पुरुष केनिज कहते हैं—'हमें अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है, सबको धनी बनाना है। इस रास्ते में नैतिक विचारों का हमारे लिए कोई मूल्य नहीं है।' उनका बहुत स्पष्ट कथन है—'यह नैतिकता का विचार न केवल अप्रासंगिक है, बल्कि हमारे मार्ग में बाधक भी है।

आज ज्वलन्त प्रश्न है भ्रष्टाचार का। बहुत सारे लोग भ्रष्टाचार की बात करते हैं, कहते हैं—आज भ्रष्टाचार बढ़ा है। जब अर्थशास्त्र की मूल धारणा यह है कि नैतिकता का विचार हमारे मार्ग में बाधक है तो फिर भ्रष्टाचार का रोना क्यों? इसमें आश्चर्य किस बात का है? वर्तमान की अर्थशास्त्रीय अवधारणा के बीच यदि भ्रष्टाचार बढ़ता है, आर्थिक अपराध बढ़ते हैं, अप्रामाणिकता और बेईमानी बढ़ती है तो स्वाभाविक है। भ्रष्टाचार न बढ़े तो आश्चर्य की बात है।

आधुनिक अर्थशास्त्र के आधार

इस समग्र पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में वर्तमान के अर्थशास्त्र और भगवान महावीर के युग के अर्थशास्त्र के कुछ कोणों पर विचार करें। आधुनिक अर्थशास्त्र के तीन मुख्य आधार हैं—

- इच्छा
- आवश्यकता
- मांग

इच्छा को बढ़ाओ, आवश्यकताओं को बढ़ाओ और मांग को बढ़ाओ। तुलनात्मक दृष्टि से देखें—इच्छा का क्षेत्र व्यापक है। आवश्यकता का क्षेत्र उससे छोटा है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मांग का क्षेत्र उससे भी छोटा है। इन तीन पर आधुनिक अर्थशास्त्र का ढांचा खड़ा है।

महावीर का अर्थशास्त्र

महावीर के अर्थशास्त्र के तत्त्वों पर विचार करें तो आधुनिक अर्थशास्त्र में चार बातें और जोड़ देनी चाहिए—

- सुविधा
- वासना, आसक्ति या मूर्च्छा
- विलासिता
- प्रतिष्ठा

केवल इच्छा पूर्ति के लिए या केवल विलासिता के लिए सारा प्रयत्न नहीं होता। अर्थ का विकास जो मनुष्य करता है, उसका एक दृष्टिकोण बनता है सुविधा। उसे सुविधा चाहिए इसलिए वह अर्थ का संग्रह करता है।

दूसरा तत्त्व है आसक्ति। न सुविधा की जरूरत, न आवश्यकता, केवल वासना की संपूर्ति। आज के विज्ञापन ऐसी वासना जागृत करते हैं जो अनावश्यक को भी आवश्यक बना देते हैं। उसे देखकर ऐसा लगता है कि इसके बिना तो हमारा जीवन चल ही नहीं सकता। यह वासना विज्ञापन के द्वारा जागृत होती है।

मनुष्य विलास के प्रति आकर्षित है। वह विलासिता की पूर्ति के लिए अधिकतम प्रयत्न करता है। विलास के लिए प्रभूत धन चाहिए। अर्थ मनुष्य की इस वृत्ति को पोषण देता है।

एक हेतु है प्रतिष्ठा, अहं का पोषण। कोई आवश्यकता नहीं है, फिर भी अहं के पोषण के लिए बहुत कुछ खरीदना पड़ता है।

केन्द्र में कौन है?

इन सूत्रों के संदर्भ में अर्थनीति पर विचार-विमर्श करें। किस अर्थ की व्यवस्था में, किस सूत्र के साथ मनुष्य प्रधान बनता है और कहां अर्थ प्रधान बनता है। कहीं-कहीं मनुष्य गौण बन जाता है और अर्थ प्रधान या मुख्य बन जाता है। यह गौण और मुख्य का अन्तर जितना स्पष्ट होगा, हमें इस सचाई का बोध होगा—अर्थशास्त्र के केन्द्र में मनुष्य कहां है और अर्थ कहां है।

अनियंत्रित इच्छा

आधुनिक अर्थशास्त्र का मुख्य सूत्र है—अनियंत्रित इच्छा ही हमारे लिए कल्याणकारी और विकास का हेतु है। जहां इच्छा का नियंत्रण करेंगे, विकास अवरुद्ध हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाएगा। जहां अनियंत्रित इच्छा है, वहां मनुष्य निश्चित रूप से परिधि में चला जाएगा और अर्थ केन्द्र में आ जाएगा।

असीम आवश्यकता

आवश्यकता के लिए भी यही सूत्र काम करता है। अर्थशास्त्र का सूत्र है—आवश्यकता को असीम विस्तार दो, कहीं रोको मत। इससे भी मनुष्य किनारे पर लग जाता है और अर्थ केन्द्र में आ जाता है।

सुविधा का अतिरेक

हम सुविधा को अस्वीकार नहीं कर सकते। महावीर ने भी इसे सर्वथा अस्वीकार नहीं किया। इसलिए कि मनुष्य के भीतर कामना है। कामना है तो फिर सुविधा उसके लिए अनिवार्य बन जाती है। कामना और सुविधा—इन दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। यदि मनुष्य की प्रकृति में काम नहीं होता तो हम सुविधा को अस्वीकार कर देते। यथार्थवादी दृष्टिकोण यही है—जहां कामना है, वहां सुविधा अनिवार्य होगी। महावीर ने भी इस यथार्थ को स्वीकार किया—सुविधा की अपेक्षा है, किन्तु जहां सुविधा का अतिरेक हो जाता है, वहां मनुष्य गौण बन जाता है और अर्थ प्रधान बन जाता है।

विलासिता

विलासिता में मनुष्य का कहीं पता ही नहीं होता। मनुष्य परिधि से भी बाहर चला जाता है। केवल अर्थ-अर्थ-और-अर्थ बचता है। विलासिता न हमारी आवश्यकता है, न अनिवार्यता। न सुविधा है, न कोरा मनोरंजन। वह केवल भोगवृत्ति का उच्छृंखल रूप है। समझदार मनुष्य उसमें किसी भी सार्थक तत्त्व को नहीं देख पाता। वहां केवल अर्थ की लोलुपता और उसकी पूर्ति के साधन के सिवा और कुछ नहीं बचता। विलासिता केवल भोग का पोषण है। इसमें काम और अहं—दोनों वृत्तियां काम करती हैं।

महावीर का सूत्र

इन सूत्रों के आधार पर अर्थनीति का निर्धारण होता है और आदमी अर्थार्जन की वृत्ति में संलग्न होता है। प्रश्न है—महावीर ने इस विषय में क्या नया सूत्र दिया? क्या इच्छा को अस्वीकार किया? महावीर ने इच्छा को अस्वीकार नहीं किया। उन्होंने स्वयं कहा—**इच्छा हु आगाससमा अणंतया**— इच्छा आकाश के समान अनन्त है। क्या आवश्यकता को रोकने की बात कही? उन्होंने यह भी नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहा—आवश्यकताओं को समाप्त कर दो, उनका प्रयोग मत करो। उन्होंने इनके साथ 'संयम' शब्द का प्रयोग किया—इच्छा का संयम करो, आवश्यकता का संयम या सीमाकरण करो।

मूलभूत आवश्यकताएं

आवश्यकता क्या है और अनावश्यकता क्या है, इसे समझना भी जरूरी है। हम शरीर की मांग को पूरा करें, वह आवश्यकता है। भूख हमारे शरीर की मांग है, प्यास हमारे शरीर की मांग है। इस मांग को पूरा करें, यह आवश्यक है। विनयविजयजी ने आवश्यकताओं का एक चित्रण किया है—शरीर की जो पहली मांग है, वह है रोटी की मांग। दूसरी मांग है पानी की। तीसरी मांग है कपड़े की। चौथी मांग है मकान और वस्त्र की। ये शरीर की चार मूलभूत मांगे हैं, आवश्यकताएं हैं।

वर्गीकरण आवश्यकता का

आवश्यक वह है, जो शरीर की मांग को पूरा करें। आवश्यक वह है, जो इन्द्रिय की मांग को पूरा करे। हमारे जीवन का पहला तत्त्व है शरीर और दूसरा तत्त्व है इन्द्रिय। अलंकरण शरीर की मांग नहीं है। यह इन्द्रियों की मांग है। संगीत सुनना, चलचित्र देखना, स्वादयुक्त भोजन, सुखद स्पर्श—ये इन्द्रियों की मांगें हैं। महावीर ने, अध्यात्म के आचार्यों ने इन्हें अस्वीकार नहीं किया। उन्होंने माना—ये मांगें हैं और इस यथार्थ पर सामाजिक प्राणी चलता है, इसलिए इन्हें स्वीकृति दी। इससे भी आगे है मन की मांग। वह शरीर के लिए जरूरी नहीं है किन्तु यदि मन की चाह, तरंग को निरस्त कर दिया जाए तो मानसिक विकृतियां भी पैदा हो सकती हैं। इसलिए मन की मांग भी आवश्यक होती है। इससे आगे बढ़ें—पारिवारिक और सामाजिक संबंधों के निर्वाह की भी एक आवश्यकता है। परिवार बढ़ाना और सामाजिक संबंधों की स्थापना भी एक आवश्यकता है। विवाह करना, संतान पैदा करना, इन्द्रिय विषयों को प्राप्त करना, यह सारा एक मांग की आवश्यकता का वर्गीकरण विनयविजयजी ने किया है।

मनुष्य का व्यक्तित्व

महावीर की सारी कल्पना एक साथ आचार्य ने प्रस्तुत कर दी। यह सारा भौतिकवादी दृष्टिकोण है, पौद्गलिक दृष्टिकोण है। आधुनिक अर्थशास्त्री भी इन सब आवश्यकताओं का प्रतिपादन करते हैं और इन्हें पूरा करने की योजना बताते हैं। महावीर ने कहा—ये मांग या आवश्यकताएं हैं, इन्हें हम स्वीकार नहीं करेंगे, किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवल ये ही नहीं हैं। मनुष्य की प्रकृति के चार तत्त्व हैं। उनमें केवल काम ही सब कुछ नहीं है। काम की पूर्ति के लिए अर्थ चाहिए, किन्तु वह भी सब कुछ नहीं है। काम है साध्य और अर्थ है उसकी पूर्ति का साधन। प्रकृति के ये दो अंग बन जाते हैं—काम और अर्थ, एक साध्य और दूसरा साधन। मनुष्य इतना ही नहीं है। यदि मनुष्य का व्यक्तित्व केवल काम और अर्थ की सीमा में ही होता तो नैतिकता, चरित्र आदि पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं होती। फिर भ्रष्टाचार, बेईमानी और अनैतिकता से ग्लानि करने की, परहेज करने की भी कोई आवश्यकता नहीं होती। केनिज ने मनुष्य की आधी प्रकृति के आधार पर अपनी अर्थशास्त्रीय घोषणा कर दी, आधी प्रकृति को अस्वीकार कर दिया।

रोटी और आस्था

प्रसिद्ध इतिहासकार टायनबी ने एक बहुत अच्छी बात कही है—कोरी रोटी और कोरी आस्था—दोनों अपर्याप्त हैं। मनुष्य केवल रोटी के आधार पर जी नहीं सकता और केवल आस्था के सहारे भी जी नहीं सकता। आज की प्रणाली तो यह है कि रोटी दो तो आस्था को खण्डित कर दो। आस्था दो तो रोटी की समस्या रह जाती है। ऐसी प्रणाली की आवश्यकता है, जिसमें रोटी भी हो और आस्था भी हो। यह समन्वित प्रणाली है। महावीर ने जो मार्ग-दर्शन दिया, जो अर्थशास्त्र का दर्शन दिया, उसमें न रोटी का अस्वीकार है और न आस्था का अस्वीकार है। दोनों का समन्वय है, रोटी भी मिले और आस्था भी।

महावीर ने कहा—मनुष्य की जो आधी प्रकृति है, उसे ठीक समझने का प्रयत्न करो। वह है धर्म संवेग या मुमुक्षा, (मुक्त होने की इच्छा)। उसको बिल्कुल उपेक्षित मत करो। जानबूझकर उसके साथ आंखमिचौनी मत करो, चरित्र को भी स्थान दो। जब चरित्र की मीमांसा करते हैं और मुक्त होने की बात सामने होती है, तब एक शब्द फलित होता है संयम। सुविधा की सीमा करो, उसे असीम मत बनाओ। मकान और वस्त्र शरीर के लिए आवश्यक हैं, पर सुविधा को इतना मत बढ़ाओ कि वह स्वयं के लिए हानिकारक बन जाए।

सुविधा की सीमा का सूत्र

महावीर की भाषा में सुविधा की सीमा का विवेक यह है—जो सुविधा शारीरिक, मानसिक और भावात्मक स्वास्थ्य को हानि न पहुंचाए, वह सुविधा मान्य है, किन्तु जो सुविधा शारीरिक, मानसिक और भावात्मक स्वास्थ्य को हानि पहुंचाए, वह सुविधा अवांछनीय। फ्रिज एक सुविधा है, किन्तु शारीरिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्यावरण के लिए भी हानिकारक है। एयरकंडीशनर स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। वातानुकूलित मकान सुविधाजनक तो है, किन्तु स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

एक प्रसिद्ध उद्योगपति बीमार हो गए। डाक्टरी दवा से स्वस्थ नहीं हुए। अस्पतालों और डाक्टरों से निराश होकर अन्त में वे एक प्राकृतिक चिकित्सक के पास गए। चिकित्सक ने उनसे पूछा—आप क्या खाते हैं? कहां रहते हैं? उन्होंने सब बताया। सारी बातें चिकित्सक के ध्यान में आ गई। उसने कहा—आप एक काम करें। तीन घंटे गरम पानी में नहाएं। उन्होंने वैसा ही किया। दो चार दिनों में स्वास्थ्य लौटने लगा। एक दिन वे गर्म पानी के टब में बैठे थे। मन में विचार आया—यह कितनी मूर्खता है। दिन में आठ-नौ घंटे तो एयरकंडीशनर में काम करो, फिर तीन घंटे गरम पानी से स्नान करो। तत्काल अपने घर के एयरकंडीशनर को निकलवा दिया। तीन घंटे गरम पानी के टब में बैठने की आवश्यकता भी समाप्त हो गई।

वांछनीय नहीं है वह सुविधा

वह सुविधा, जो हमारे शारीरिक स्वास्थ्य को हानि पहुंचाए, वांछनीय नहीं है। आज बहुत सारे पदार्थ ऐसे आ गए, जो एक बार सुविधाजनक लगते हैं, किन्तु अंततः मन को विकृत बना देते हैं, मानसिक चंचलता पैदा कर देते हैं। जितने भी मनोरंजन के क्लब हैं और उनमें जो सुविधाएं दी जाती हैं, वे एक बार तो मन को अच्छी लगती हैं, किन्तु उसके बाद मन विकृति से भरता चलता जाता है। इसीलिए महावीर ने कहा—सीमा करो, ऐसी सुविधा को मत भोगो।

एक व्यक्ति से पूछा गया—'शराब क्यों पीते हो?'
उसने कहा—'मेरे लिए आवश्यक है।'
'क्यों आवश्यक है? इससे क्या होता है?'
'इसके पीते ही सारा तनाव मिट जाता है।'

यह तर्क की भाषा है—शराब हमारे टेंशन को मिटाने के लिए आवश्यक है। महावीर ने कहा—इस काल्पनिक आवश्यकता की सीमा करो। यथार्थ की आवश्यकता रोटी और पानी है। यह शराब केवल काल्पनिक आवश्यकता है, जिसे तुम तनाव मिटाने के लिए जरूरी बताते हो। आज मादक वस्तुओं का जो बाजार प्रभावी है, वह काल्पनिक आवश्यकता के आधार पर बना है। इस विषय में महावीर से पूछा जाए—क्या करें तो महावीर कहेंगे—'संयम करो। यह तुम्हारे लिए जरूरी नहीं है। यह तुम्हारी कृत्रिम आवश्यकता है, तुमने इसे आवश्यकता मान लिया है, वस्तुतः यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह आवश्यकता नहीं है।' हमारी कल्पना भी बहुत बार आवश्यकता पैदा कर देती है।

रेल के डिब्बे में दो यात्री आसपास बैठे थे। एक उठा। उसने आगे बढ़ कर खिड़की को बन्द कर दिया। दूसरा उठा और खिड़की को खोल दिया। एक नाटक शुरू हो गया। एक खोलता है, दूसरा बन्द कर देता है। टी॰ टी॰ आया। यात्रियों ने उन दोनों का नाटक बताया और अपनी परेशानी व्यक्त की। टी॰ टी॰ ने पूछा—तुम दोनों ऐसा क्यों करते हो? पहला बोला—मुझे गर्मी लगती है, घुटन महसूस होती है तो खिड़की क्यों न खोलूं? दूसरे ने कहा—मुझे सर्दी लगती है तो क्यों न बन्द करूं? टी॰ टी॰ ने दोनों को खिड़की के पास बुलाया और कहा—देखो! दोनों ने ध्यान से देखा तो पता चला कि खिड़की में शीशा ही नहीं हैं।

सचाई को न भुलाएं

जब शीशा ही नहीं है तो बन्द करने से क्या लाभ और खोलने से क्या लाभ? हमारी काल्पनिक आवश्यकताएं, कृत्रिम अपेक्षाएं इतनी ज्यादा होती हैं कि हम सचाई को भुला देते हैं। महावीर इसीलिए कहते हैं कि तुम काल्पनिक आवश्यकता की सीमा करो, संयम करो। सुविधा की भी सीमा करो, संयम करो। महावीर ने यह नहीं कहा—केवल आत्मा सत्य है और जगत् मिथ्या है। उन्होंने व्यवहार को भी मिथ्या नहीं बतलाया। व्यवहार भी एक सचाई है। पौद्गलिक जगत् भी एक सचाई है। अपेक्षा, आवश्यकता और सुविधा—यह भी एक सचाई है, किन्तु इन्हें उच्छृंखल मत बनाओ, मर्यादा का अतिक्रमण मत करो, इनकी एक सीमा निर्धारित करो। सीमा का भी एक बहुत अच्छा सूत्र प्रस्तुत कर दिया—जहां मूल को हानि न पहुंचे, शरीर, मन और भावधारा को हानि न पहुंचे। टी॰ वी॰ हमारी इन्द्रियों को हानि पहुंचाता है। कितने बच्चे इसके प्रबल आसक्त बन गए, कितने लोग आंखों की ज्योति मन्द कर बैठे। समाचार-पत्र में पढ़ा—ब्रिटेन में बच्चों के चश्में बहुत बिके। कारण खोजा गया तो पता चला—बच्चे टेलीविजन के बहुत निकट बैठकर देखते हैं, बहुत लम्बे समय तक देखते हैं, इसलिए आँखों की समस्या बढ़ रही है, चश्मे बढ़ रहे हैं। यह उच्छृंखल और अतिशय वृत्ति है।

अनावश्यक है विलासिता

महावीर ने कहा—विलास को समाप्त करो। विलासिता सर्वथा अनावश्यक है। इसका पूर्ण निरोध करो, संयम करो। यह बात कुछ कटु लग सकती है, किन्तु बहुत सच्ची है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडम्बितं।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा॥

वासना को बढ़ाने वाले गीत, गीत नहीं, विलाप हैं। वासना को बढ़ाने वाले नृत्य और नाटक विडम्बना हैं, प्रदर्शन को बढ़ाने वाले आभरण भारभूत हैं। उच्छृंखल वासना दुःख को बढ़ाने वाली है।

यदि इतिहास उपलब्ध होता

महावीर ने संयम का एक अभियान शुरू किया, प्रयोग शुरू किया और उस समय जब आबादी आज जितनी नहीं थी, पांच लाख व्यक्तियों का एक समाज बनाया। वह महावीर के सिद्धान्तों को मानने वाला समाज था। पांच लाख लोग उस समय की दृष्टि से कम नहीं होते। लिच्छवी गणतंत्र का प्रमुख महाराजा चेटक महावीर के उस व्रती समाज का एक प्रमुख सदस्य था। पूरा जैन इतिहास आज प्राप्त नहीं है। भारतीय इतिहास में जैन तथ्यों की जितनी उपेक्षा हुई है, शायद किसी की नहीं हुई है। अनेक राजाओं, गणतंत्र के प्रमुखों, जैन सेनापतियों और सार्थवाहों का इतिहास आधुनिक इतिहासकारों ने गायब कर दिया। यदि उनका इतिहास आज हमारे सामने उपलब्ध होता तो लिच्छवी, वज्जी आदि गणतंत्र महावीर के अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर चलते थे, यह तथ्य स्वयं सिद्ध हो जाता।

मौलिक अंतर

महावीर ने एक ऐसे समाज को हमारे सामने प्रस्तुत किया, जो संयमी और व्रती समाज था। व्रत और संयम के संदर्भ में हम आधुनिक अर्थशास्त्र और महावीर के अर्थशास्त्र की तुलना करें। पहला अन्तर तो मूल में ही दर्शन का आएगा। आधुनिक अर्थशास्त्र एकांगी भौतिकवाद पर आधारित है। महावीर के अर्थशास्त्र में भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद—दोनों स्वीकार है। आधुनिक अर्थशास्त्र ने एक लक्ष्य बना लिया है—मनुष्य को धनी बनाना है। महावीर के अर्थशास्त्र का लक्ष्य था—मनुष्य शान्ति के साथ, सुख के साथ अपना जीवन बिताए। क्योंकि शान्ति के बिना सुख नहीं मिलता। सुख शान्ति पूर्वक होता है। गीता में कहा गया—

न चाभावयतः शान्तिः अशान्तस्य कुतः सुखम्।

भावना के बिना शान्ति नहीं होती और शान्ति के बिना सुख का सपना भी नहीं लिया जा सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न केन्द्र और परिधि का

एक ओर धन से मिलने वाला सुख है, दूसरी ओर शान्ति से मिलने वाला सुख है। भौतिकवाद के आधार पर धन सुख—यह समीकरण बनेगा। महावीर के अर्थशास्त्र का समीकरण होगा—धन की सीमा = शान्ति + सुख। व्रत, संयम और सीमाकरण के संदर्भ में हम महावीर के अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों का मूल्यांकन कर सकते हैं। इस सिद्धान्त का केन्द्रीकृत निष्कर्ष यह होगा—जहां व्रत है, संयम और सीमाकरण है, वहां अर्थशास्त्र के केन्द्र में मनुष्य रहता है, अर्थ दूसरे नम्बर पर रहता है। जहां ऐसा नहीं है, व्रत, संयम और नैतिकता का विचार नहीं हैं, वहां पदार्थ और अर्थ केन्द्र में रहेगा, मनुष्य पर्दे के पीछे। इस संदर्भ में वर्तमान की समस्या को, आर्थिक अपराधों को समझने में बहुत सुविधा होगी। हम सरलता के साथ यह समझ सकते हैं—आज क्यों आर्थिक भ्रष्टाचार बढ़ रहा है? क्यों आर्थिक अपराध बढ़ रहे हैं? क्यों सत्ता के शीर्ष पर बैठा व्यक्ति आर्थिक आराधों में लिप्त होकर त्यागपत्र देने को बाध्य होता है? जेल में जाने को विवश होता है? जब तक मनुष्य परिधि में रहेगा, अर्थ केन्द्र में रहेगा, तब तक ऐसी घटनाओं को रोका नहीं जा सकेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकास की अर्थशास्त्रीय अवधारणा

भगवान् महावीर ने प्रत्येक कार्य, विकास या पर्याय को सापेक्ष बतलाया। बहुत शाखाएं हैं, बहुत शास्त्र हैं। अनेक विद्या की शाखाओं में परस्पर संबद्धता है। जितने भी शास्त्र हैं, उनमें भी परस्पर सापेक्षता है। यद्यपि अर्थशास्त्र अर्थ के विषय में ही चिन्तन करता है किन्तु कोई भी शास्त्र निरपेक्ष होकर चल नहीं सकता। ऐसा प्रतीत होता है—आधुनिक अर्थशास्त्र ने निरपेक्ष होकर चलने का प्रयत्न किया है। शायद इसी का परिणाम है कि अनेक समस्याएं सुलझने के स्थान पर उलझी हैं, हिंसा को प्रोत्साहन मिला है।

केनिज ने अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य बतलाया—हर निर्धन व्यक्ति धनी बने, मालामाल बन जाए। उद्देश्य आकर्षक है। इस विषय में साम्यवाद और पूंजीवाद में कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता। प्रक्रिया और परिणाम में अन्तर हो सकता है, किन्तु मूल उद्देश्य यही है कि कोई भी व्यक्ति निर्धन न रहे, गरीब न रहे, गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन न करे। प्रत्येक व्यक्ति की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और वह सुख शान्ति के साथ अपना जीवन जी सके— यह विकास का एक लक्ष्य बनाया गया। अर्थशास्त्रीय दृष्टि से विकास की परिभाषा भी यही है। आर्थिक विकास, प्रौद्योगिकी का विकास, टेक्नोलोजी का विकास, प्रति व्यक्ति आय और जीवनस्तर—ये आधुनिक अर्थशास्त्र के विकास में मानदण्ड हैं।

प्रिय नहीं है दरिद्रता

प्राचीन काल में भी कहा गया—**अधनं निर्बलं**—जो अधन है, वह निर्बल है। दरिद्र और गरीब कभी वांछनीय नहीं रहा। दरिद्रता सदा तिरस्कृत हुई है। उसे किसी भी दृष्टि से अच्छा नहीं माना गया।

एक ब्राह्मण पण्डित ने राजा भोज से मिलने के लिए प्रस्थान किया। वह बहुत दरिद्र था। राजा को भेंट करने के लिए कपड़े में गन्ने के कुछ खण्ड (टुकड़े) बांधकर ले लिए। कुछ देर विश्राम करने के लिए वह जंगल में सो गया। उधर से आ रहे एक व्यक्ति ने उसे देखा। उसने सोचा—राजा के पास यह पुरस्कार के लिए इक्षुखण्ड लेकर जा रहा है। उसने कपड़े से इक्षुखंड निकाल लिए और उसकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगह लकड़ियां बांध दी। पंडित सोकर उठा। वह कपड़े में बंधी लकड़ियों को लेकर राजा के महल की ओर चल पड़ा। दरबार में पहुंचकर भेंट करने की इच्छा से जब कपड़े को खोला तो उसमें लकड़ियां देखकर स्तब्ध रह गया। वह बहुत चिंतित हो गया। महाकवि कालिदास समझ गए—इस व्यक्ति के साथ किसी ने छल किया है। उन्होंने तुरन्त स्थिति को संभालने हुए कहा—'महाराज ! आज जैसा उपहार आया है, वैसा कभी किसी ने भेंट नहीं किया। बड़ा अद्भभूत उपहार है।' राजा ने पूछा—कैसे ? कालिदास ने कहा—

दग्धं खाण्डव मर्जुनेन बलिना रम्यद्रुमैर्भूषितं,
दग्धा वायुसुतेन हेमनगरी लंका पुनः स्वर्णभूः।
दग्धो लोकसुखो हरेण मदनः किं तेन युक्तं कृतं,
दारिद्र्यं जग तापकारकमिदं केनापि दग्धं न हि॥

खाण्डव वन को अर्जुन ने जला दिया, सोने की लंका को हनुमान ने जला दिया और कामदेव को शंकर ने जला दिया, लेकिन इस दरिद्रता को, जो सबको जलाती है, कोई जला नहीं सका। यह विप्र इस दरिद्रता को जलाने के लिए ईंधन भेंट कर रहा है। इसे जलाने में आप ही समर्थ हैं।

दरिद्रता कभी प्रिय नहीं रही, गरीबी कभी वांछनीय नहीं रही, न प्राचीनकाल में, न अर्वाचीनकाल में। सब चाहते हैं कि गरीब कोई न रहे, समाज किसी को न सताए। किन्तु यह बड़ा कठिन काम है।

अर्थशास्त्र का ध्येय

आधुनिक अर्थशास्त्र ने इस तथ्य का प्रतिपादन किया—मनुष्य के स्वार्थ के मनोवेग को उभारा जाए। आज के अर्थशास्त्र का ध्येय रहा है—जहां तक हो सके, स्वार्थवृत्ति को उभारा जाए। जितना स्वार्थ उभरेगा, उतना ही विकास होगा। केनिज ने बड़ी दृढ़ता के साथ इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त में सचाई नहीं है, ऐसा मैं नहीं मानता। क्योंकि व्यक्तिगत प्रेरणा और व्यक्तिगत स्वार्थ जितना मनुष्य से काम करवाता है, उतना कोई नहीं करवाता। स्वार्थ हमारी एक बहुत बड़ी प्रेरणा है और बहुत प्रिय है। जिस सिद्धान्त का आधुनिक अर्थशास्त्र ने प्रतिपादन किया, वह प्रिय है, आकर्षक है—हर व्यक्ति अपने स्वार्थ को बढ़ाए और व्यक्तिगत स्वामित्व जितना विकसित कर सके, करे। जितना अर्जन कर सके, करे।

साम्यवाद ने जो सिद्धान्त प्रस्तुत किए, वे भी कम आकर्षक नहीं हैं। कोई भी व्यक्ति भूखा नहीं रहेगा, बिना मकान के नहीं रहेगा, वस्त्रहीन नहीं रहेगा, आजीविका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शून्य नहीं रहेगा, प्राथमिक आवश्यकताएं सबकी पूरी होंगी। यह साम्यवाद का आकर्षण सपना था, और है।

प्रेय और हित

इस संदर्भ में महावीर के दर्शन की मीमांसा करें। प्रिय और हित—इन दो शब्दों पर ध्यान दें। एक बात प्रिय लगती है, किन्तु हितकर नहीं है। एक बात हितकर है, किन्तु प्रिय नहीं लगती। एक बात ऐसी भी हो सकती है, जो प्रिय भी है और हितकर भी है। हर व्यक्ति धनवान बने, स्वार्थ के मनोवेग को उभारें, जिससे संपदा का विकास हो—यह प्रिय है, किन्तु हितकर नहीं है। व्यक्ति में स्वार्थ वैसे भी बहुत तीव्र होता है। इस वैयक्तिक स्वार्थ ने समाज में काफी समस्याएं पैदा की हैं। इसे और तीव्र बनाने का प्रयत्न किया जाए तो परिणाम कैसा होगा, यह हम आज के समय को देखकर समझ सकते हैं।

हर व्यक्ति चाहता है—समाज में आर्थिक विकास हो, किन्तु प्रश्न है कि कैसे हो? इसकी प्रक्रिया क्या हो? आर्थिक विकास निर्विकल्प है। महावीर कहते हैं—आर्थिक विकास की बात करते समय इन बिन्दुओं पर विचार अवश्य करो—

- अहिंसा और साधन-शुद्धि
- मूल्यों का ह्रास न हो
- स्वार्थ की सीमा

अहिंसा और साधन-शुद्धि

आर्थिक विकास के साथ कहीं हिंसा तो नहीं बढ़ रही है? साधन-शुद्धि की दृष्टि से विचार करें—

आर्थिक विकास हो, किन्तु वह येन-केन-प्रकारेण नहीं। एक व्यक्ति आज सामान्य स्थिति में है। उसने किसी सम्पन्न व्यक्ति का अपहरण कर लिया। एक करोड़ की फिरौती मांगी। उसमें सफल हुआ गरीब से करोड़पति बन गया। आर्थिक विकास तो उसका हो गया किन्तु उसके लिए जो साधन अपनाए, जो प्रक्रिया अपनाई, क्या वह वाछनीय हो सकती है?

प्राचीनकाल में एक चिन्तन रहा—प्रसिद्धि आदमी को विजय दिलाती है। एक व्यक्ति के मन में विकल्प उठा—मुझे प्रसिद्ध होना है। इसके लिए क्या करूं? किसी ने सलाह दी—जाओ, बाजार में घड़ों को इकट्ठे रखो और लाठी से फोड़ो, बहुत प्रसिद्ध हो जाओगे। ऐसा न कर सको तो पहने हुए कपड़ों को उतार फेंको, नग्न हो जाओ, एकदम प्रसिद्ध हो जाओगे। यह भी न कर सको तो गधे की सवारी करो, प्रसिद्ध हो जाओगे। प्रसिद्ध होने के ये सबसे सस्ते नुस्खे हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घटं भिन्द्यात् पटं छिन्द्यात् कृत्वा रासभरोहणम्।
येन केन प्रकारेण प्रसिद्ध: पुरुषो भवेत्॥

दो सूत्र हैं—एक येन-केन प्रकारेण का और दूसरा साधन-शुद्धि का। भगवान् महावीर ने कहा—समाज के क्षेत्र में आर्थिक विकास में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती किन्तु यह येन-केन प्रकारेण नहीं होना चाहिए, उसमें अहिंसा की दृष्टि से विचार होना चाहिए, साधन-शुद्धि से विचार होना चाहिए।

मूल्यों का ह्रास न हो

महावीर ने कहा—अर्थार्जन में मूल्यों का ह्रास न हो। महावीर की अवधारण और आधुनिक अर्थशास्त्र की अवधारणा में इस दृष्टि से हम बहुत अन्तर देखते हैं आर्थिक विकास में मूल्यों का ह्रास न हो, यह अनिवार्य शर्त रही। आज स्थिा दूसरी हो गई है। केनिज ने स्पष्ट कह दिया—'अभी यह समय नहीं आया है कि हम मूल्यों पर विचार करें या नैतिकता पर विचार करें। जब सभी धनवान् बन जाएंगे तब इस पर विचार करने की जरूरत पड़ेगी।' यह बहुत बड़ा अन्तर है, महावीर व अर्थशास्त्रीय अवधारणा और आज की अर्थशास्त्रीय अवधारणा में। करुणा व विकास, संवेदनशीलता का विकास, आर्थिक विकास के साथ-साथ होना चाहिए कहीं ऐसा तो नहीं हो रहा है कि समृद्ध बनने के साथ-साथ उसी अनुपात में हमार करुणा, दया का स्रोत सूखता जा रहा है। एक व्यक्ति ने क्रूरता के साथ धन बटोरा उससे आर्थिक विकास तो हो सकता है किन्तु उसका यह विकास हजारों व्यक्तियें के लिए एक गड्ढा खोद देता है।

स्वार्थ की सीमा

स्वार्थवृत्ति से सर्वथा अछूता नहीं रहा जा सकता। साधना करने वाले व्यक्ति में भी अपना स्वार्थ होता है। वह सर्वथा बुरा और अवांछनीय भी नहीं होता, अच्छ भी होता है किन्तु उसकी एक सीमा होनी चाहिए। ऐसा स्वार्थ न हो कि वह दूसरे के हित को हानि पहुंचाए। व्यक्ति अकेला नहीं हैं, दुनिया बहुत बड़ी है। अरबे आदमी हैं। एक व्यक्ति अपने स्वार्थ को इतना उभारे कि अपना तो आर्थिक विकास करे और दूसरों को हानि पहुंचाए। यह नहीं होना चाहिए।

महावीर ने कहा—आर्थिक विकास के साथ इन बिन्दुओं पर विचार करो। महावीर का श्रावक आनन्द आर्थिक दृष्टि से बहुत सम्पन्न था। उसके पास हजारों-हजारों एकड़ कृषि भूमि थी। चालीस हजार गायों की गौशाला थी। करोड़ों की संपदा व्यापार में लगी हुई थी किन्तु व्रती समाज का सदस्य होने के नाते उसका यह व्रत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था—अर्थार्जन में अप्रामाणिक साधनों का उपयोग नहीं करूंगा। इसी के आधार पर उसने अपना आर्थिक विकास किया था।

धर्म और आर्थिक विकास

आर्थिक विकास करने में कोई धर्म बाधा नहीं डालता। आधुनिक अर्थशास्त्र के बहुत से विद्वानों ने कहा—हमारे धर्म कहते हैं, अंकुश लगाओ, यह मत करो, वह मत करो। ये निर्देश अनुपयोगी हैं, विकास में बाधक हैं। वस्तुतः हम प्रियता के कोण से सोचते हैं, तभी ये बाधक लगते हैं। हित के कोण से सोचें तो पाएंगे—ये बाधक नहीं, साधक हैं। प्रियता और हित दोनों दृष्टियों से सोचें तो अर्थशास्त्र मनुष्य के लिए बहुत लाभकारी हो सकता है। केवल प्रियता की दृष्टि से विचार करेंगे तो पाएंगे—आज के अर्थशास्त्र ने मनुष्य-समाज में बहुत विकृतियां पैदा की हैं, उसे क्रूर बनाया है, शोषण के रास्ते पर अग्रसर किया है।

विद्यमान है साम्राज्यवादी मनोवृत्ति

आज टेक्नोलोजी का बहुत विकास हुआ है, इसमें कोई संदेह नहीं है। किन्तु उसके साथ यदि करुणा रहती तो शायद मनुष्य जाति के लिए इतना खतरा पैदा नहीं होता। टेक्नोलोजी का प्रयोग जिस सूक्ष्मता के साथ संहार की दिशा में हुआ है, उतना लाभ की दिशा में नहीं हुआ है। इसका कारण यही है कि साम्राज्यवादी मनोवृत्ति मनुष्य में विद्यमान है। एक समय था जब भूखण्ड का साम्राज्य चलता था। भूमि पर अधिकार करो, अधिकाधिक जमीन हड़पो, यह एक प्रकार का भौगोलिक साम्राज्यवाद था। आज आर्थिक साम्राज्यवाद का युग है। आज महत्व इस बात का नहीं है कि भूमि कितनी है, महत्व इस बात का है कि हाथ में बाजार कितना है। जापान एक छोटा देश है, बहुत ज्यादा जनसंख्या वाला देश नहीं है, किन्तु विश्व बाजार में वह सर्वाधिक प्रभावी है।

स्वार्थ और क्रूरता

आर्थिक साम्राज्य कायम करने की एक होड़-सी लगी हुई है। अमेरिका, इंग्लैंड, जापान, जर्मनी, ये सभी देश एक दूसरे को इस दौड़ में पीछे छोड़ देना चाहते हैं। इस आर्थिक साम्राज्यवाद के विस्तार में टेक्नोलोजी का भरपूर प्रयोग हुआ है किन्तु मानव कल्याण के लिए कम हुआ है। औद्योगिक विकास की भी यही स्थिति है। तर्क तो यह दिया जाता है—औद्योगिक विकास जितना होगा, विकास के उतने ही अवसर बढ़ेंगे, रोजगार बढ़ेंगे। करुणा की बात उसके बाद आती है। जहां स्वार्थ प्रबल होता है, वहां करुणा प्रबल नहीं हो सकती। महावीर का यह निश्चित सिद्धान्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है—स्वार्थ जितना बढ़ेगा, क्रूरता भी उतनी ही बढ़ेगी। स्वार्थ जितना सीमित होगा, करुणा का उतना ही विस्तार होगा। स्वार्थ भी शिखर पर और करुणा भी शिखर पर, यह स्थिति कभी सम्भव नहीं है।

तर्क रोजगार का

रोजगार का तर्क भी बहुत श्लथ है। जो युग आ रहा है, वह रोबोट का युग है, कम्प्यूटर का युग है। जहां हजार मजदूर काम करते थे, वहां आज पांच मजदूरों से ही काम चल जाएगा। रोजगार कहां मिला? इस मशीनी युग में आदमी ज्यादा बेरोजगार हो रहा है, होता जा रहा है। प्रयत्न है गरीबी और बेरोजगारी मिटाने का किन्तु जैसे-जैसे यांत्रिक विकास हो रहा है, रोबोट मनुष्य के हाथ से काम छीन रहा है, गरीबी और बेरोजगारी उतनी ही रफ्तार से बढ़ रही है। इस इलेक्ट्रोनिक युग ने कहां तक पहुंचा दिया है—जापान जैसे देश में तो धर्मगुरु का काम भी रोबोट से हो रहा है। किसी की मृत्यु हो जाती है, उसका परिवार प्रार्थना हेतु धर्मस्थल में जाता है तो रोबोट उनका अभिवादन करता है, उन्हें धैर्य और सांत्वना देता है, पूरा धर्म का पाठ उन्हें सुना देता है। अन्त में आशीर्वाद देकर धन्यवाद के साथ उन्हें विदा करता है। यह सारा काम रोबोट करता है।

अपेक्षा कहां है?

मनुष्य की अपेक्षा कहां है? ऐसा लगता है कि इस रोबोट और कम्प्युटर के युग में मनुष्य को मौन धारण कर हिमालय की किसी गुफा में शरण ले लेनी चाहिए। मनुष्य ने बहुत श्रम किया है, अब उसके लिए विश्राम का क्षण आ गया है। आचार्य ने बहुत सुन्दर कहा—**सर्वारंभा तन्दुलप्रस्थमूला**—मनुष्य की सारी प्रवृत्ति एक सेर चावल के लिए है। अगर सेर भर चावल की जरूरत न हो तो फिर प्रवृत्ति की भी कोई अपेक्षा न रहे। किन्तु इस औद्योगिक विकास ने अर्थ को मनुष्य पर इतना हावी कर दिया है कि उसके आगे वह गौण हो गया है।

प्रश्न प्रति व्यक्ति आय का

अर्थशास्त्र का एक उद्देश्य है प्रति व्यक्ति आय। निश्चित ही प्रति व्यक्ति आय उन देशों में बढ़ी है, जो विकसित देश हैं, किन्तु आज ऐसा लगता है—पूंजीवाद (कैपिटलिज्म) भी अपनी अंतिम सांसे गिनने लगा है। जापान, अमेरिका जैसे विकसित राष्ट्रों में भी बेरोजगारी बढ़ने लगी है। आंकड़े बताते हैं कि वहां भी गरीबी की रेखा के नीचे जीवन जीने की नौबत आ रही है। रूस की स्थितियों से परिचित लोग जानते हैं साम्यवाद के शासनकाल में भी हजारों-हजारों लोग सड़क के किनारे पड़े

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाइपों में शरण लेते थे। कोई मकान नहीं था, बड़े-बड़े पाइपों में लोग रैन-बसेरा करते थे। आज तो वहां भयंकर गरीबी और भुखमरी की सी स्थिति बनती जा रही है। खाने की चीजों के लिए लम्बी क्यू लगती है।

यदि प्रति व्यक्ति आय समान होती, तो समस्या का समाधान होता किन्तु वैसा हुआ नहीं। गांधीजी ने कहा था—'आर्थिक समानता का आदर्श आदमी कभी प्राप्त नहीं कर सकेगा। क्योंकि वैयक्तिक क्षमता भिन्न-भिन्न है, योग्यता भिन्न-भिन्न है। हर व्यक्ति इस बिन्दु पर पहुंच नहीं सकता।' स्वार्थ को उभारने का परिणाम यह आया—आज दुनिया की सारी पूंजी कुछ हजार लोगों के हाथों में ही केन्द्रित हो गई हैं। इतने बड़े-बड़े धनी बन गए हैं कि सिवाय प्रतिष्ठा और झूठे अहं के पोषण के उनकी सूची में कुछ है ही नहीं। दुनिया का प्रथम नम्बर का धनी, द्वितीय नम्बर का धनी और तृतीय नम्बर का धनी—बसयही उनकी सूची है। इसलिए प्रति व्यक्ति आय वाली बात भी जटिल बनती जा रही है।

आकांक्षा जीवन स्तर की

स्टैंडर्ड ऑफ लिविंग की धारणा ने भी आदमी को बहुत धोखे में डाला है, दिग्मूढ बनाया है। हर व्यक्ति के मन में लालसा है कि जीवन स्तर उन्नत होना चाहिए। समस्या यह है—उसके लिए पास में साधन नहीं है। प्रतिष्ठा का मानदण्ड, विकास का चिह्न यह मान लिया गया कि इतनी बातें तो होनी ही चाहिए। यदि यह धारणा होती—जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए तो कोई समस्या नहीं थी। यह एक स्वस्थ चिन्तन है। पशु-पक्षी भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं तो मनुष्य जैसा बुद्धिमान् प्राणी न करे, यह कैसे हो सकता है? किन्तु इस स्टैंडर्ड ऑफ लिविंग की धारणा ने प्राथमिक आवश्यकताओं गौण कर दिया, अनावश्यक वस्तुओं के प्रति एक ललक मनुष्य के भीतर पैदा कर दी।

मनुष्य की तीन कोटियां

महावीर ने मनुष्य का अध्ययन किया, मनुष्य की वृत्तियों का अध्ययन किया। उन्होंने बतलाया— मनुष्य अलग-अलग प्रकृति का होता है, सबको एक ही तराजू से मत तोलो। उन्होंने तीन वर्गों में मनुष्य को विभाजित किया—

- महेच्छ
- अल्पेच्छ
- इच्छाजयी।

पहली कोटि के मनुष्य वे हैं, जो महा इच्छा महारंभ वाले हैं। दूसरी कोटि के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य वे हैं, जो अल्पेच्छ, अल्पारंभ हैं। तीसरी कोटि के मनुष्य वे हैं, जो इच्छाजयी, अनारंभ हैं।

महेच्छा

आज का अर्थशास्त्र कहता है—इच्छा को बढ़ाओ। इच्छा बढ़ेगी तो महारंभ होगा, बड़ी प्रवत्ति होगी। दूसरा तत्त्व है अल्प इच्छा, अल्पारंभ। इच्छा भी अल्प और आरम्भ भी अल्प। महावीर ने दोनों वृत्तियों का विश्लेषण करते हुए कहा—जो महारंभ होगा, महेच्छ होगा। वह आजिविका अधर्म के साथ चलाएगा, धर्म का विचार नहीं करेगा। ऐसा कह कर महावीर ने मानो आज के अर्थशास्त्र की भविष्यवाणी कर दी थी। महावीर ने कहा—वह पुरुष चण्ड, रुद्र, क्षुद्र, वक्र, दुःशील, दुष्प्रत्यानंद होगा। महेच्छ पुरुष की प्रकृति का महावीर ने सजीव चित्रण किया है। महा-इच्छा और महारंभ प्रवृत्ति वाला व्यक्ति कोई विचार नहीं करेगा। अपने लिए उपयोगी है, लाभ मिल रहा है तो वह किसी के प्राण-वियोजन से भी कंपित नहीं होगा।

आज विलासिता और सौन्दर्य प्रसाधनों के निर्माण के कितने-कितने निरीह और मूक पशु-पक्षियों की निर्मम हत्या की जा रही है। मुलायम और कठोर प्लास्टिक बनाने के लिए स्थापित किए जा रहे कारखानों में लाखों चूजों के अविकसित परों को काटकर इस्तेमाल किया जा रहा है। मांस के निर्यात के लिए कितने भी बूंचड़खाने लगाने पड़ें, कोई चिन्ता की बात नहीं है। सारा कुछ धन के पीछे हो रहा है। इतना चण्ड, रौद्र हुए बिना विपुल धन की प्राप्ति नहीं हो सकती। माया, कूट-कपट, प्रपंच—यह सब भी इसके पीछे करना पड़ता है। जाली खाते, रिश्वत, धमकी, हत्या, अपहरण—आज क्या-क्या नहीं किया जा रहा है। सब उस महाइच्छा वाले वर्ग का चित्रण है, जो परिग्रह में निरन्तर डूबा हुआ है।

यह सोचा भी नहीं जा सकता—इच्छा, परिग्रह और आरम्भ को बढ़ाकर इन दुष्प्रवत्तियों से कोई बच सकेगा। हम प्रिय के साथ हित की बात सोचें। इच्छा को अल्प किए बिना, नियंत्रित किए बिना हित की बात को जोड़ा नहीं जा सकता।

अल्पेच्छ

एक मनुष्य अल्पेच्छ होता है। इच्छा है, किन्तु अल्प है। ऐसा व्यक्ति कारखाना लगाएगा, किन्तु पूंजी को केन्द्रित नहीं करेगा। महात्मा गांधी ने जो विकेन्द्रित अर्थनीति और विकेन्द्रित सत्ता की बात कही, वह महावीर के इसी अल्पेच्छ शब्द का अनुवाद है। अल्पेच्छ या अल्पारंभ का तात्पर्य ही विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था है। महावीर ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहा— धम्मेण वित्ते कप्पेमाणा—अल्प इच्छा वाला व्यक्ति धर्म के साथ अपनी आजीविका चलाता है।

हमारे सामने दो शब्द हैं—अल्पेच्छ और महेच्छ। एक है धर्म के साथ जीविका चलाने वाला, दूसरा है अधर्म के साथ जीविका चलाने वाला। धर्म के साथ का तात्पर्य है—न्यायसंगत, करुणा के साथ। महावीर के एक परम उपासक श्रावक श्रीमद्-राजचन्द्र की चर्चा करूं। गांधीजी को अहिंसा का बीजमंत्र देने वाले और जिन्हें बोधिदीप मिला तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य से। श्रीमद् राजचन्द्र ने एक व्यापारी से सौदा किया। जवाहरात का व्यवसाय था। भावों में यकायक तेजी आ गई। सामने वाले व्यापारी को एक मुश्त पचास हजार का घाटा हो रहा था। श्रीमद् राजचन्द्र ने उससे कहा—तुम एग्रीमेंट का वह रुक्का लाओ। व्यापारी बोला—श्रीमन् ! आप चिन्ता न करें। मैं आपकी एक-एक पाई चुका दूंगा, किन्तु अभी मेरी स्थिति नहीं है। श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा—चुकाने या न चुकाने की बात में नहीं कर रहा। मैं एक बार वह रुक्का देखना चाहता हूं। उसने सोचा, रुक्का पाते ही ये कोर्ट में केस कर देंगे और मैं फंस जाऊंगा। इसलिए वह न देने आग्रह करता रहा किन्तु अन्ततः उसे रुक्का देना ही पड़ा। रुक्का हाथ में लेकर उसे फाड़ते हुए श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा—'राजचन्द्र दूध पी सकता है, किसी का खून नहीं पी सकता। यह सौदा मैं रद्द करता हूं।'

इसका नाम है करुणा। अल्प इच्छा वाला व्यक्ति धर्म के साथ अपनी आजीविका चलाता है। वह किसी के साथ अन्याय नहीं करता, क्रूर व्यवहार नहीं करता, शोषण नहीं करता, हेराफेरी नहीं करता, धरोहर को नहीं छिपाता।

इच्छाजयी

तीसरे प्रकार का व्यक्ति होता है अनिच्छ। उसे हम सामाजिक प्राणी नहीं कहेंगे। वह अनिच्छ या इच्छाजयी होता है। जो साधु-संन्यासी बनकर समाज से अलग हो जाता है, उसके कोई प्रवृत्ति नहीं, कोई कारखाना नहीं, कोई व्यापार नहीं, केवल साधना का जीवन होता है। भगवान् महावीर ने कहा—तीसरी कोटि की बात छोड़ दें। वैसे इस कोटि के व्यक्ति भी कम नहीं हुए। महावीर के उस वर्ती समाज में अल्पेच्छ लोगों की संख्या पांच लाख थी और इच्छाजयी लोगों की संख्या पचास हजार थी योरोप में हमारे समण समणियां जाते हैं तो वहां के लोग यह देखकर आश्चर्य करते हैं—ये सर्दी, गर्मी कैसे सहन करते हैं? पैसा नहीं रखते हैं। आज के युग में कोई आदमी ऐसा हो सकता है, जिसके पास पैसा न हो? वहां के लोग कल्पना भी नहीं करते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपेक्षा मनुष्य की

आधुनिक अर्थशास्त्र का दृष्टिकोण है—निजी लाभार्जन, मनुष्य की प्रकृति की उपेक्षा और केवल लाभ की उपेक्षा। जिस वस्तु में कोई लाभ नहीं, वह आज की अर्थशास्त्रीय दृष्टि से बिल्कुल व्यर्थ है। महत्त्व है बाजार का, वस्तु का कोई मूल्य नहीं है। मनुष्य की प्रकृति की बिल्कुल उपेक्षा की गई। व्रती समाज में मनुष्य की प्रकृति को महत्त्व दिया गया। यह दोनों में दृष्टिकोण का बड़ा अन्तर है।

अर्थशास्त्र का योगदान

आधुनिक अर्थशास्त्र ने समस्याओं को समाधान नहीं दिया है, यदि यह कहें तो एक एकांगी दृष्टिकोण होगा। महावीर को समझने वाला, कभी एकांगी दृष्टिकोण से विचार नहीं करता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आधुनिक अर्थशास्त्र की कुछ अवधारणों ने समाज की कुछ समस्याओं को सुलझाया है और गरीब को भी कुछ राहत दी है। किन्तु जितनी राहत दी है, उतनी ही दूसरी समस्याएं पैदा कर दी हैं। तटस्थ चिंतन करें तो यह स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि वर्तमान अर्थशास्त्रीय अवधारणाओं ने हिंसा को भी प्रोत्साहन दिया है।

अहिंसा का अर्थशास्त्र

पूज्य गुरुदेव जैन विश्वभारती के प्रांगण में विराज रहे थे। अजमेर विश्व विद्यालय के उपकुलपति डॉ० कान्ता आहूजा आए। वार्तालाप के प्रसंग में हमने कहा—हम चाहते हैं अहिंसा का अर्थशास्त्र। उन्होंने कहा—यह कौन-सा अर्थशास्त्र होगा? अर्थशास्त्र का तो जन्म ही हिंसा से होता है। उसमें अहिंसा की बात कहां से आएगी?'

हम इस सचाई को समझें—केवल गरीबी को मिटाने वाला अर्थशास्त्र ही हमारे लिए उपयोगी नहीं है। हमारे लिए वह अर्थशास्त्र भी उपयोगी है, जो गरीबी को मिटाए और साथ-साथ हिंसा का संवर्द्धन भी न करे। आर्थिक समृद्धि और अहिंसा की समृद्धि दोनों की समन्वित प्रणाली की आज अपेक्षा है। महावीर ने व्रती समाज की जो कल्पना दी, उसमें इस प्रणाली के लिए पर्याप्त तत्त्व मिलते हैं। उन तत्त्वों के द्वारा इस समन्वय को पूरा किया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा और शान्ति का अर्थशास्त्र

आधुनिक अर्थशास्त्र का उद्देश्य शान्ति नहीं है और अहिंसा भी नहीं है। उसका उद्देश्य है आर्थिक समृद्धि। प्रत्येक मनुष्य धनवान् बने, कोई गरीब न रहे, मनुष्य की प्राथमिक अनिवार्यताएं पूरी हों। इतना ही नहीं, वह साधन सम्पन्न बने। आर्थिक समृद्धि के लिए साधन के रूप में लोभ, इच्छा, आवश्यकता और उत्पादन बढ़ाने की बात भी स्वीकृत है।

कम्युनिज्म का उद्देश्य

कम्युनिज्म का उद्देश्य रहा सत्ता को हथियाना। जो निम्न वर्ग है, पिछड़ा या मजदूर वर्ग है, उसके हाथ में सत्ता आए। किन्तु कैसे आए, इसमें कोई विचार नहीं रहा, साधन-शुद्धि की कोई अनिवार्यता नहीं रही। अगर अच्छे साधन से आए तो अच्छी बात, किन्तु अच्छे साधन से न आए तो जैसे-तैसे सत्ता पर कब्जा किया जाए। अर्थशास्त्र में भी यही बात है। आर्थिक समृद्धि बढ़नी चाहिए। उसके लिए लोभ और स्पर्धा अनिवार्य मान लिए गए। जितना लोभ बढ़ेगा, अनिवार्यताएं बढ़ेंगी, उतना उत्पादन बढ़ेगा, आर्थिक विकास होगा। जितनी स्पर्धा होगी, उतना ही आर्थिक विकास आगे बढ़ेगा। इस स्थिति में शान्ति और अहिंसा की बात गौण हो जाती है।

अर्थशास्त्र का उद्देश्य

यह स्वीकार करना चाहिए—अर्थशास्त्र के सामने शान्ति का प्रश्न मुख्य नहीं है, नैतिकता का प्रश्न भी मुख्य नहीं है। डॉ० मार्शल आदि कुछ उत्तरवर्ती अर्थशास्त्रियों ने स्वीकार किया है कि परिणामतः नैतिकता आनी चाहिए, किन्तु नैतिकता इसमें अनिवार्य नहीं है। केनिज ने कहा—'जब हम आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो जाएंगे तब नैतिकता पर विचार करने का अवसर आएगा। अभी उसके लिए उचित समय नहीं है। अभी जो गलत है, वह भी हमारे लिए उपयोगी है।' अर्थशास्त्र उपयोगिता के आधार पर चलता है, इसलिए उसमें गलत कुछ भी नहीं है। जो उपयोगी है, वह सही है, वह हमारे लिए वांछनीय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गांधी का दृष्टिकोण

यह दृष्टिकोण आज के अर्थशास्त्र का है। प्रश्न है—महावीर का दृष्टिकोण क्या रहा? महावीर से पहले गांधी के दृष्टिकोण की चर्चा करें। महात्मा गांधी ने साम्यवाद के कुछ पहलुओं का विरोध किया। उद्योगवाद और केन्द्रवाद—इन दो पहलुओं का उन्होंने विशेष विरोध किया। उन्होंने कहा—सत्ता का केन्द्रीकरण और पूंजी का केन्द्रीकरण हिंसा को बढ़ाने वाला है। जहां-जहां सत्ता केन्द्रित होती है, पूंजी केन्द्रित होती है, वहां-वहां समस्याएं बढ़ती हैं।' गांधी की यह बात अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। जहां भी सत्ता और पूंजी का केन्द्रीकरण हुआ, वहां हिंसा बढ़ी। गांधी ने एक और मार्मिक बात कही—'हिंसा की नींव पर खड़ा कोई भी शासन टिक नहीं सकता, साम्यवाद भी टिकेगा नहीं।' गांधी की कई दशक पहले की गई यह भविष्यवाणी सही निकली। हिंसा के आधार पर कोई भी वस्तु स्थायी नहीं हो सकती। इस आधार पर उन्होंने उद्योगवाद का विरोध किया।

उद्योगवाद का परिणाम

उद्योगवाद आर्थिक गुलामी का ही रूपान्तरण है, उसका एक पर्याय है। जैसे-जैसे उद्योग केन्द्रित होंगे, आर्थिक गुलामी की स्थिति अवश्य बनेगी, फलतः शोषण होगा। शोषण केवल समाज का ही नहीं होगा, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का शोषण करेगा। जिस राष्ट्र के पास औद्योगिक क्षमता बढ़ेगी, वह उस क्षमता का उपयोग दूसरे राष्ट्र के शोषण में करेगा।

उद्योगवाद में दो बातें साथ चलती हैं—क्षमता और क्षमता के द्वारा शोषण तथा हिंसा। जहां उद्योगवाद को खुला अवकाश मिलता है, वहां युद्ध संघर्ष आदि समस्याएं उत्पन्न होती हैं। महात्मा गांधी ने उद्योगवाद के विरोध में विकेन्द्रित उद्योग की बात कही, केन्द्रीकृत पूंजी के प्रतिपक्ष में विकेन्द्रित पूंजी और ट्रस्टीशिप की बात कही। इसका अर्थ है—गांधी जी ने अहिंसा और शान्ति प्रतिपादन किया।

सुखवाद की अवधारणा

हम महावीर की ओर चलें। महावीर के सामने मुख्य प्रश्न था संयम का, शान्ति और अहिंसा का। जहां संयम और शान्ति है, वहां अहिंसा है। अर्थशास्त्र में मुख्य प्रश्न रहता है संतुष्टि का। जनता को आवश्यकताओं की संतुष्टि मिले। संतुष्टि और सुख—यह अर्थशास्त्र का मुख्य ध्येय रहा। सुखवाद एक दार्शनिक अवधारणा रही है। पश्चिम में सुखवादी दृष्टीकोण पर काफी विचार हुआ है। भारत में भी यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टिकोण रहा है किन्तु उसके साथ एक और भी दृष्टिकोण रहा है, वह है दुःखवाद का। सुख प्राप्य है, किन्तु जैसे-तैसे प्राप्य नहीं है।

महावीर के सामने संतुष्टि और सुख का प्रश्न गौण था, शान्ति का प्रश्न मुख्य था। जब शान्ति का प्रश्न मुख्य होता है, दृष्टिकोण बदल जाता है। जहां शान्ति का प्रश्न है, वहां, साधन-शुद्धि का विचार मुख्य होगा।

महावीर ने एक गृहस्थ के लिए अर्थार्जन का निषेध नहीं किया। वे स्वयं अपरिग्रही थे, किन्तु उन्होंने गृहस्थ के लिए अपरिग्रह का विधान नहीं किया। यह सम्भव भी नहीं था। एक धर्माचार्य असम्भव बात कैसे कर सकते थे? उन्होंने अनेकान्तवाद की दृष्टि से मध्यममार्ग बतलाया—एक गृहस्थ अपरिग्रही नहीं हो सकता, फिर भी उसे इच्छा का परिमाण करना चाहिए, अर्थार्जन में साधन-शुद्धि का विचार करना चाहिए।

अर्थशास्त्र के तीन घटक

अर्थशास्त्र में तीन बातों पर मुख्य रूप से विचार किया जाता है—

- उत्पादन
- वितरण
- उपभोग

महावीर के समय उत्पादन का मुख्य स्रोत था कृषि। वह युग कृषि का युग था। उस समय उद्योग नहीं थे। मुख्य था कृषि का व्यवसाय। कृषि के सन्दर्भ में उन्होंने एक गृहस्थ को जो मार्ग-दर्शन दिया, वह यह है—कृषि में भी साधन-शुद्धि का विचार करो।

साधन-शुद्धि के सूत्र

महावीर ने उत्पादन में साधन-शुद्धि के लिए पांच सूत्र दिए—

- बंध न करना
- वध न करना
- छविच्छेद न करना।
- अतिभार न लादना।
- भक्तपान का विच्छेद न करना

उन्होंने जिस व्रती समाज का निर्माण किया, उसके लिए ये पांच विधान किए—

- कृषि का व्यवसाय करते हो तो बन्ध का प्रयोग मत करो। बांध कर मत रखो, न पशुओं को बांधो, मनुष्यों को बांधो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- वध न करो। पीटो मत, मारो मत, सताओ मत।
- छविच्छेद मत करो। उस युग में अंगभंग करने का दण्ड भी विधान में था। दास प्रथा का युग था। अंगभंग करने की सजा भी दी जाती थी। दण्ड स्वरूप हाथ काट देते थे, पैर काट देते थे, शरीर के दूसरे अवयव काट देते थे। महावीर ने कहा—अंग-भंग मत करो
- अतिभार मत लादो, मनुष्यों पर भी नहीं और पशुओं पर भी नहीं।
- आजीविका का विच्छेद मत करो, किसी का शोषण मत करो। यह न हो कि श्रम अधिक हो पारिश्रमिक कम मिले।

श्रम, अर्थ और संयम

उत्पादन का सारा श्रम अर्थ के साथ चलता है। श्रम का मूल्य क्या है? एक व्यक्ति श्रम करता है, उसके प्रतिफल में उसे क्या मिलता है? महावीर के समय से लेकर साम्यवाद और गांधीजी के समय तक इस पर काफी विचार चला है—कितना श्रम और कितना अर्थ। इस संदर्भ में साम्यवाद का सिद्धान्त रहा—योग्यता के अनुरूप कार्य और कार्य के अनुरूप आजीविका या दाम। गांधीजी ने इसमें कुछ संशोधन किया। उन्होंने कहा—'आवश्यकता की कोई एक परिभाषा नहीं हो सकती इसलिए उसका एक यांत्रिक रूप नहीं होना चाहिए। यह विवेक पर निर्भर होना चाहिए। जितना काम, उतना दाम।'

महावीर ने सूत्र दिया—श्रम और अर्थ के बीच में संयम को जोड़ो। केवल श्रम और अर्थ ही नहीं, बीच में संयम भी रहे। श्रम का भी शोषण न हो, आजीविका का भी विच्छेद न हो। कल्पना करें—एक आदमी समर्थ है, वह ज्यादा काम कर लेता है। एक आदमी कमजोर है, उतना काम नहीं कर पाता। किन्तु रोटी तो दोनों को चाहिए। यदि श्रम के आधार पर ही उन्हें मूल्य दिया जाएगा तो आजीविका का विच्छेद हो जाएगा, शोषण हो जाएगा। जो प्राथमिक अनिवार्यताएं, आवश्यकताएं हैं, उनकी पूर्ति होनी चाहिए। महावीर ने बड़े महत्त्वपूर्ण शब्द का चुनाव किया—भक्तपान विच्छेद—रोटी-पानी की कमी न हो, उसका विच्छेद न हो।

तीन निर्देश

उत्पादन में बहुत सारी वस्तुएं आती है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने उत्पान से कुछ कारकों को हटाया है।डा० सेठ और मार्शल ने वेश्यावृत्ति को उत्पादन से अलग कर दिया। इसे उत्पादक श्रम नहीं माना। उन्होंने इस पर नैतिकता की दृष्टि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से विचार किया। महावीर और गांधीजी की दृष्टि से विचार करें तो और भी बहुत सारी बातें उत्पादन से हट जाएंगी। महावीर ने उत्पादन के संदर्भ में तीन निर्देश दिए—

- अहिंसप्पयाणे—हिंसक शस्त्रों का निर्माण न करना
- असंजुत्ताहिकरणे—शस्त्रों का संयोजन न करना
- अपावकम्मोवदेसे—पाप कर्म का, हिंसा का प्रशिक्षण न देना।

ये तीन निर्देश अर्थशास्त्र की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

पहला निर्देश है हिंसक अस्त्रों का निर्माण उत्पादन की सूची से हटना चाहिए। व्रती समाज के लिए तो यह अनिवार्य था कि वह शस्त्रोपादन नहीं कर सकता। वह केवल निर्माण ही नहीं, हिसंक शस्त्र का विक्रय भी नहीं कर सकता था। आज तो यह बहुत बड़ा व्यवसाय बन चुका है। अरबों-खरबों डालर के अस्त्र-शस्त्रों का क्रय-विक्रय हो रहा है। इनके निर्माण में जोरदार प्रतिस्पर्धा चल रही है। आधुनिक अर्थशास्त्र में शोषण की जो बात कही जाती है, उसका एक बड़ा रूप है खुला बाजार। यह फ्री मार्केट आज शोषण का अड्डा बन गया है।शस्त्रों का भी खुला बाजार है। जहां चाहें, शस्त्र खरीद लें। लाइसेंस प्रणाली कारगर सिद्ध नहीं हो रही है। कुछ राष्ट्रों में तो लाइसेंस की जरूरत भी नहीं है। यह शस्त्र-निर्माण और शस्त्र-विक्रय व्रती समाज का सदस्य नहीं कर सकता।

दूसरा निर्देश है शस्त्र के पुर्जों का संयोजन न करना। व्रती समाज का सदस्य शस्त्रों के पुर्जों का आयात-निर्यात न करे, उन्हें जोड़कर तैयार भी न करे।

तीसरा निर्देश है—पाप कर्म का उपदेश न देना। हिंसा का, युद्ध का प्रशिक्षण देना भी एक व्रती के लिए वर्जित था। आज की स्थिति देखें। हिंसा का प्रशिक्षण देने के लिए ऐसे स्कूल खोले गए हैं, जहां आंतकवाद का प्रशिक्षण दिया जाता है, उसकी सूक्ष्म तकनीक सिखाई जाती है। कैसे आंतक के द्वारा पूरे समाज और राष्ट्र को भयभीत किया जा सकता है, इसकी ट्रेनिंग दी जाती है।

इस संदर्भ में महावीर ने व्रती समाज के लिए जो विधान किए, वे अहिंसा और शान्ति के अर्थशास्त्र की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

कर्मादान

उद्योग के संदर्भ में भी महावीर ने कुछ सूत्र दिए। गांधीजी ने बड़े उद्योगों का विरोध किया। महावीर ने अल्पेच्छा और अल्पारंभ यानी विकेन्द्रित नीति का सूत्र सामने रखा। केन्द्रीकरण के विषय में महावीर ने कहा—यह हिंसा को बढ़ावा देती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। उस समय के जो उद्योग थे, उनका वर्गीकरण हुआ। उन्हें व्रत की आचार-संहिता में कर्मादान कहा गया। पन्द्रह कर्मादान बतलाए गए। व्रती समाज के सदस्य के लिए, श्रावक के लिए पन्द्रह कर्मादान का निषेध किया गया, उनके सीमाकरण की बात कहीं गई। उस समय का एक उद्योग था—इंगालकम्मे—कोयले का उद्योग। एक था—वणकम्मे—ईंधन का उद्योग। एक उद्योग था, जंगलों को जलाना। एक उद्योग था खेती की भूमि बढ़ाने के लिए तालाब आदि को सुखाना। उस समय ये कुछ उद्योग चलते थे

महावीर ने कहा—इनकी भी सीमा करो, निरंकुश रूप में उद्योगों का विस्तार मत दो और अपने हाथ में इन्हें ज्यादा केन्द्रित मत करो। महावीर का एक श्रावक था—उद्दालपुत्र। जाति का कुम्हार था। उसकी पांच सौ दुकानें थीं। सैकड़ों-सैकडों आवां उसके चलते थे। कुम्भहार व्यवसाय का एक बड़ा उद्योगपति था। उद्दालपुत्र ने महावीर से सीमाकरण का व्रत स्वीकार किया था।

सीमाकरण का अर्थ

असीम और ससीम—ये दो शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। असीम का अर्थ है हिंसा की ओर प्रस्थान। सीमाकरण का अर्थ है शान्ति की ओर प्रस्थान। एक योग्य व्यक्ति, जिसमें व्यावसायिक क्षमता, बौद्धिक क्षमता है, वह व्यक्ति अपनी व्यावसायिक क्षमता के द्वारा इतना अर्जित कर लेता है कि हजारों-लाखों के लिए एक गड्ढा बन जाता है। उसके लिए सीमा कुछ नहीं है। आखिर समृद्धि बढ़े तो कितनी बढ़े? इस प्रश्न के संदर्भ में कहा गया—पर्याप्त समृद्धि होनी चाहिए किन्तु पर्याप्त की कुछ सीमा तो होगी। अपर्याप्त कहां तक होगा? एक व्यक्ति के लिए एक नहीं, दस मकान भी अपर्याप्त हैं। कलकत्ता में भी एक कोठी चाहिए। बम्बई, दिल्ली और मद्रास में भी एक-एक भव्य कोठी चाहिए। जहां जाए, वहां उसके लिए अपना एक घर हो। कहां-कहां बंगले बनाता रहेगा? कहीं कोई सीमा तो निर्धारित करनी होगी। अर्थ का संग्रह इतना असीम बन जाए तो फिर उसका परिणाम क्या होगा, यह सोचा भी नहीं जा सकता।

आधुनिक अर्थशास्त्र की समस्या

साधन-शुद्धि का विचार न होना आधुनिक अर्थशास्त्र की सबसे बड़ी समस्या है। इसके बिना हम अहिंसा और शान्ति की बात नहीं सोच सकते। वर्तमान में हो रहे युद्धों के पीछे क्या यह असीम वाली बात नहीं है? कारण खोजें तो निश्चित ही इस सचाई का पता चलेगा। अस्त्र-शस्त्रों के बड़े-बड़े कारखाने हैं। शस्त्र-उद्योग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब समूचे संसार में अपना प्रभुत्व स्थापित किए हुए है। जब युद्ध थमते हैं, शान्ति स्थापित होती है, शस्त्रों के निर्माता शक्तिशाली राष्ट्र विश्व के किसी न किसी कोने में युद्ध की चिनगारी सुलगा ही देते हैं। उद्देश्य है सिर्फ अपने हथियारों की खपत। तबाही मचाने वाला यह उद्योग शांतिकाल में खुद तबाह हो जाता है। शस्त्र का उद्योग एक प्रकार से युद्ध का चालू करने का आधार है। अरबों-खरबों डालर से चल रहे ये उद्योग हिंसा की बुनियाद पर खड़े हैं।

हम पूरे विश्व की आर्थिक मीमांसा करें। सारे संसार में शस्त्र-निर्माण पर हो रहे खर्च को देखकर दंग रह जाएंगे। हिन्दुस्तान की सबसे अनिवार्य आवश्यकता है शिक्षा, जिससे व्यक्तित्व का, जीवन का निर्माण होता है। शिक्षा और सुरक्षा पर हो रहे खर्च की तुलना करें तो आकाश-पाताल का अंतर दिखाई देगा। शिक्षा पर मुश्किल से दो-तीन प्रतिशत व्यय होता है और सुरक्षा पर भारी-भरकम बजट बनते हैं। पूरे विश्व के संदर्भ में देखे तो आधी से भी ज्यादा पूंजी सुरक्षा पर खर्च हो रही है। यदि यह पूंजी गरीबी के उन्मूलन और शान्ति की स्थापना में लगे तो समाधान प्राप्त हो जाए। लेकिन ऐसा वे नहीं होने देगें, जो शस्त्र-उद्योग के स्वामी बने हुए हैं।

उत्पादन का विवेक

अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण में एक विरोधाभास आ गया। उत्पादन किसका होना चाहिए, यह विवेक ही समाप्त हो गया। मादक वस्तुओं का कितना उत्पादन होता है। शराब का कितना बड़ा उद्योग है। अफीम, चरस, हेरोइन, ड्रग्स की बात जाने दें। पाउच पैक में उपलब्ध जर्दे और पान मसाले का ही करोड़ों का कारोबार हो रहा है। यह सब क्यों हो रहा है? तम्बाकू न हो तो जर्दा कहां से आए, अफीम न हो तो हेरोइन कहां से आए? उत्पादन की एक सीमा होनी चाहिए, एक विवेक होना चाहिए। किस वस्तु का उत्पादन बढ़े? जो जीवन की प्राथमिक अनिवार्यताएं नहीं हैं, उनका उत्पादन या तो विलासिता की ओर ले जाता है या मादकता की ओर। आखिर उन वस्तुओं का उत्पादन क्यों हो, जो मनुष्य के लिए हर दृष्टि से हानिकार हैं?

कब्जा चेतना पर

आज केवल आर्थिक लाभ के लिए किए जा रहे ऐसे हानिप्रद उत्पादनों ने पूरे विश्व के सामने भयंकर संकट खड़ा कर दिया है। भारत सहित दुनिया के तमाम राष्ट्र मादक पदार्थों की तस्करी से जूझ रहे हैं। शस्त्र के उद्योगपतियों ने जैसे बाजार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर अपना कब्जा कर रखा है वैसे ही मादक वस्तुओं के विक्रेताओं ने भी बाजार पर कब्जा कर रखा है। केवल बाजार पर ही नहीं, मनुष्य की चेतना पर भी कब्जा कर रखा है। मादक वस्तुओं का आदी व्यक्ति इनके अभाव में कैसे छटपटाता है, यह केवल वही जान सकता है। वह उस समय मरणान्तक कष्ट झेलता है।

महावीर ने कहा—उत्पादन की भी सीमा करो। हर चीज का उत्पादन न हो। मादक वस्तुओं का न उत्पादन हो और न सेवन। जो पाप कर्मोपदेश हैं, पाप कर्म का कारण हैं, उनका भी वर्जन होना चाहिए। आर्थिक व्यवसाय की दृष्टि से जो सू उन्होंने दिए, वे अहिंसा और शान्ति की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

व्यवसाय-शुद्धि के सूत्र

महावीर ने व्यवसाय के लिए साधन-शुद्धि के अनेक सूत्र दिए—

- कूट तोल-माप मत करो।
- वस्तु दिखाओ कुछ और दो कुछ, यह मत करो।
- किसी की धरोहर का गबन मत करो।

उपासक दशा सूत्र के टीकाकार अभयदेवसूरी ने लिखा—'उस समय मिलावट बहुत चलती थी, रिश्वत भी बहुत चलती थी।' मानव की यह प्रकृति सदा रही है, धन के प्रति उसकी लालसा हर युग में हर समय में रही है। मिलावट भी उस समय विभिन्न प्रकार से चलती थी रिश्वत भी बहुत चलती थी।

चाणक्य ने लिखा—'पानी में तैरने वाली मछली संभव है आकाश में उड़ने लगे, किन्तु राज्यकर्मचारी रिश्वत न ले, यह संभव नहीं।' मनुष्य की प्रकृति का सदा एक रूप रहा है। अर्थ के प्रति लालसा, सुविधा और इन्द्रियों का सुख—ये सदा काम्य रहे हैं और जब से इन्हें बौद्धिकवादी समर्थन मिला, तब से और भी ज्यादा उच्छृंखलता आ गई। समाजवाद का आधार भी भौतिकवाद है पूंजीवाद का आधार भी भौतिकवाद है। जहां केवल भौतिकवाद है, वहां अर्थ, सुविधा और इन्द्रियसुख को ही प्रधानता मिलेगी, इसीलिए इस उच्छृंखलता से हमें कोई आश्चर्य नहीं है।

प्रश्न संयम और तृप्ति का

मनुष्य के सामने सदा से दो मार्ग रहे हैं—

- इन्द्रिय-संयम का
- इन्द्रिय-तृप्ति का

प्राचीन अर्थशास्त्र ने भी इन्द्रिय-तृप्ति की बात सामने रखी। किन्तु यह निर्देश भी दिया—इन्द्रिय-तृप्ति करो, साथ-साथ इन्द्रिय-संयम भी करो। चाणक्य ने राजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और शासक के लिए कहा—राजा को इन्द्रियजयी होना चाहिए। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या—ये जो छह शत्रु हैं, राजा को इनका विजेता होना चाहिए। एक सामाजिक प्राणी के लिए इन्द्रिय-तृप्ति आवश्यक है तो इन्द्रियों का संयम भी आवश्यक है। यह सीमा-विवेक का सूत्र है—इन्द्रिय-तृप्ति करो, किन्तु एक सीमा में। उपभोग करो, किन्तु एक सीमा के साथ। उसके बाद संयम करो। यदि ऐसा हो तो यह संयम का अर्थशास्त्र बनेगा और जो संयम का अर्थशास्त्र बनेगा, वह अहिंसा का अर्थशास्त्र बनेगा, शान्ति का अर्थशास्त्र होगा।

वर्तमान का एक दृष्टिकोण रहा—हम नैतिकता पर अभी विचार नहीं करेंगे, संयम पर विचार नहीं करेंगे, अहिंसा और शान्ति पर विचार नहीं करेंगे, जब समय आएगा तब करेंगे। इसका अर्थ है—जब तक वह समय न आए, तब तक समाज असंयम के परिणाम भोगता चला जाए। आज परिणाम हमारे सामने मुखर हो रहे हैं। उत्पादन के विषय में महावीर ने हमें जो विवेक दिया, जो आचारसंहिता दी, उससे अर्थशास्त्र के भी महत्वपूर्ण सिद्धान्त फलित होते हैं। यदि इनका अनुशीलन किया जाए, प्रयोग किया जाए तो वर्तमान समाज अनेक विकृतियों से बच सकता है।

वितरण का सिद्धान्त

दूसरा है वितरण का सिद्धान्त। आबादी बढ़ी और साधन कम हुए। साधनों पर राज्य का नियंत्रण बढ़ा। वितरण की समस्या पैदा हो गई। यह स्वर प्रखर बना—वितरण समान होना चाहिए। महावीर के समय में वितरण कोई समस्या नहीं थी, क्योंकि आबादी भी कम थी, प्राथमिक आवश्यकताओं के साधन भी इतने दुर्लभ नहीं थे और उपेक्षाएं भी कम थीं। आज विज्ञापनों ने आवश्यकताओं को बहुत बढ़ाया है। उस युग में आवागमन और यातायात के इतने साधन भी नहीं थे। चौबीस कोस दूर की बात को पहुंचने में बहुत समय लगता था। आज के संचार साधनों और विज्ञापनों ने इतनी कृत्रिम आवश्यकताएं उभार दी हैं कि अब और तब के समय में कोई तुलना ही नहीं हो सकती। उस समय हर गांव अपनी आवश्यकता की चीज पैदा करता था और उसका उपभोग करता था। वितरण की समस्या का प्रश्न ही नहीं था।

स्वदेशी का स्रोत

गांधीजी ने स्वदेशी आन्दोलन चलाया और आज बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आगमन पर कुछ राजनीतिक दल फिर जिस स्वदेशी की बात कर रहे हैं, उस स्वदेशी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का मूल स्रोत मिलता है महावीर के द्वारा प्रदत्त व्रत की आचार-संहिता में। एक व्रत है दिग्व्रत—दिशा का परिमाण करो। दिल्ली में रहने वाला परिमाण करेगा—दिल्ली के बाहर की किसी वस्तु का उपभोग नहीं करूंगा। कपड़ा पहनूंगा तो दिल्ली में बना हुआ। अनाज खाऊंगा तो दिल्ली की सीमा में पैदा हुआ अनाज की खाऊंगा। यह दिग्व्रत है, जो स्वदेशी का मूल आधार है। महात्मा गांधी श्रीमद् राजचन्द्र की छत्रछाया में अहिंसा के सिद्धान्त को पल्लवित कर रहे थे। गांधीजी पर उनका प्रभाव था, इसलिए महावीर के सूत्रों को अपनाना उनके लिए स्वाभाविक था। विकेन्द्रित अर्थनीति, विकेन्द्रित उद्योग और स्वदेशी—ये तीनों महावीर की आचारसंहिता से आविर्भूत हुए हैं, प्रकट हुए हैं, ऐसा सहज ही माना जा सकता है।

दिग्व्रत का उद्देश्य

दिग्व्रत का एक उद्देश्य था—साम्राज्यवादी मनोवृत्ति पर अंकुश लगाना। आर्थिक साम्राज्य हो या भौगोलिक, एक विशेष सीमा से आगे नहीं जाऊंगा। यातायात की एक सीमा थी—पांच सौ किलोमीटर की सीमा से आगे नहीं जाऊंगा अथवा इस सीमा से आगे नहीं जाऊंगा। इसमें भी दिशा का प्रतिबंध था—ऊर्ध्व दिशा, तिर्यक् दिशा, अधोदिशा या अमुक दिशा में इतनी सीमा से आगे नहीं जाऊंगा। इस दिशा से बाहर मैं अपनी वस्तु का विक्रय नहीं करूंगा। न आयात करूंगा और न निर्यात। प्रतिबंध दिशा के साथ भी जुड़ा था। यह महत्वपूर्ण सूत्र साम्राज्यवादी मनोवृत्ति पर अंकुश लगाने में कारगर हुआ।

संकल्प शान्ति के लिए

आज उद्योगों के अग्रणी राष्ट्र, जापान, जर्मनी, ब्रिटेन आदि यह निश्चय कर लें—हम अपनी वस्तुओं का निर्यात नहीं करेंगे तो आर्थिक साम्राज्य का यह भीषण युद्ध थम जाएगा, शान्ति और अहिंसा के प्रयत्न आवश्यक नहीं होंगे। केवल शान्ति ही शान्ति होगी, युद्ध का प्रश्न ही समाप्त हो जाएगा। आज शस्त्र निर्माण करने वाले देश यह संकल्प कर लें कि हम अपने द्वारा निर्मित शस्त्र का निर्यात नहीं करेंगे, अपने देश से बाहर नहीं भेजेंगे तो फिर युद्ध के खतरे स्वयं समाप्त हो जाएंगे।

द्वैधनीति

आज की कूटनीति की यह बड़ी हैरत और आश्चर्य की बात है—एक ओर एक राष्ट्र संधि और समझौते की बात कर रहा है, दूसरी ओर वही राष्ट्र दूसरे पक्ष को शस्त्र की भी सप्लाई कर रहा है। शान्ति का मध्यस्थ भी वही है और शस्त्र की आपूर्ति कर शस्त्रों की होड़ को बढ़ावा देने वाला भी वही है। यह द्वैधनीति ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिंसा और अशान्ति की जननी है

गरीबी कौन मिटाएगा?

हर व्यक्ति की आकांक्षा होती है धनी बनने की। बड़े-बड़े कारखाने किसी को धनी नहीं बना सकते। ये लोहे की मशीनें दुनिया से गरीबी को नहीं मिटा सकती। गरीबी मिटेगी स्वदेशी की भावना से। मनुष्य शान्ति के साथ जीवन-यापन कर सके बस इतनी सी ही तो आकांक्षा है। उसके लिए कम्प्यूटर, रोबोट की सहायता क्यों ली जाए?

लाओत्से कहीं जा रहे थे। जंगल में एक महिला रोती हुई मिली। लाओत्से रुक गए, पूछा—'बहिन! तुम रो क्यों रही हो?' महिला ने कहा—'महाराज! चीते ने मेरे लड़के को खा लिया। लड़के को ही नहीं, मेरे पति को भी वह खा गया।' लाओत्से ने कहा—'फिर इस जंगल में क्यों रहती हो?' वह बोली—'इसलिए कि यहां कोई क्रूर शासक नहीं है, शान्ति है यहां। जंगली जानवर कभी-कभी हानि पहुंचा देते हैं, किन्तु क्रूर शासक के अत्याचार से तो बचे हुए हैं।'

आदमी शान्ति चाहता है। वही भंग हो जाए तो जीवन में सुख, समृद्धि और उल्लास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आज की अर्थशास्त्रीय अवधारणा साधन भले ही उपलब्ध करा दे, वह अन्तःकरण की संतुष्टि और आन्तरिक आनन्द नहीं प्रदान कर सकती। आज आवश्यकता है—अहिंसा और शान्ति की बात सामने रखकर अर्थशास्त्रीय अवधारणाओं का पुनरावलोकन करें, उन पर पुनर्विचार करें। यह पुनर्विचार ही अहिंसा और शांति के अर्थशास्त्र की आवश्यकता और उपयोगिता का बोध करा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्तिगत स्वामित्व एवं उपभोग का सीमाकरण

हमारे सामने समाज के दो चित्र हैं, दो प्रारूप हैं—

- अनियन्त्रित इच्छा, अनियंत्रित आवश्यकता और अनियंत्रित उपभोग वाला समाज।
- नियंत्रित इच्छा, नियंत्रित आवश्यकता और नियंत्रित उपभोग वाला समाज

इन दोनों की समीक्षा करें। जिस समाज की इच्छा अनियंत्रित है, आवश्यकता भी अनियंत्रित है, उपभोग भी अनियन्त्रित है, वह समाज कैसा होगा? जिस समाज की इच्छा, आवश्यकता और उपभोग नियंत्रित है, वह समाज कैसा होगा?

अमित तृष्णा

हमारी दुनिया में प्रत्येक पदार्थ सीमायुक्त है। इकोलोजी का पहला सूत्र है—लिमिटेशन। उपभोक्ता अधिक और पदार्थ कम। पदार्थ सीमित और इच्छा असीम, दोनों में संगति कैसे हो? एक व्यक्ति की इच्छा इतनी अधिक होती है कि उसे पूरा नहीं किया जा सकता। राजस्थानी का एक मार्मिक पद्य है—

तन की तृष्णा अल्प है, तीन पाव या सेर।
मन की तृष्णा अमिट है, गले मेर के मेर॥

तन की तृष्णा तो तनिक-सी है। पाव-दो पाव या बहुत ज्यादा सेर भर खाया जा सकता है। किन्तु मन की तृष्णा इतनी अधिक है कि मेरु पर्वत को भी निगल सकती है। अनियंत्रित इच्छा मनुष्य को सुख देने के लिए नहीं, उसे सताने के लिए, दुःख देने के लिए होती है। दुःख का पहला बिन्दु है अमित तृष्णा। वह पूरी होती नहीं है, भीतर ही भीतर शल्य की तरह पीड़ा देती रहती है।

अनियंत्रित आवश्यकता

दूसरा तत्त्व है आवश्यकता। आवश्यकता भी अनियन्त्रित है। आवश्यकता आगे चलकर कृत्रिम आवश्यकता का रूप ले लेती है और बढ़ती चली जाती है। इसे भी कभी पूरा नहीं किया जा सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनियन्त्रित उपभोग

तीसरा तत्त्व है उपभोग। वर्तमान की उपभोक्तावादी संस्कृति ने उपभोग को अनियन्त्रित कर दिया है। उपभोग आवश्यक है, किन्तु जब से उपभोक्तावाद आया है, तब से इसकी इतनी अधिक वृद्धि हुई है कि इससे स्वास्थ्य, मन और चेतना—तीनों प्रभावित हुए हैं।

अनियंत्रित समाज का परिणाम क्या होगा? इच्छापूर्ति के लिए, आवश्यकता को बढ़ाने और उसे पूरा करने के लिए हिंसा आनिवार्य हो जाती है। नया उपभोक्तावाद एक प्रकार से नई हिंसा का उपक्रम है। हिंसा को इससे नया आयाम मिला है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में एक लालसा है कि इतना उपभोग तो आवश्यक है। वह पूरा नहीं होता है तो फिर उसे येन-केन प्रकारेण पूरा करने का प्रयत्न होता है। अपहरण, चोरी या हत्या करके भी उसे प्राप्त किया जाता है क्योंकि वह लक्ष्य बन जाता है। आज के अर्थशास्त्र में नैतिक विचार के लिए अवकाश कम है या बिल्कुल नहीं है। नैतिक, मानवीय और जीवन मूल्यों की इसमें कोई आवश्यकता नहीं मानी जाती। इस स्थिति में जैसे-जैसे प्राप्त करना ही एक मात्र लक्ष्य बन जाता है।

दूसरा चित्र

समाज का दूसरा चित्र है—नियंत्रित इच्छा, आवश्यकता और उपभोग वाला समाज। जिसने इच्छा को सीमित किया है, वह कभी दुःखी नहीं बनेगा। वह इस सचाई को जानता है—इच्छा को कभी पूरा नहीं किया जा सकता। इसलिए वह पहले ही उस पर नियंत्रण कर दुःख का एक दरवाजा बन्द कर देता है।

जीवन की प्राथमिक आवश्यकता व्यक्ति को सताती नहीं है। वह सताती है, जो काल्पनिक और कृत्रिम रूप से पैदा की गई है। वह पदार्थ के प्रति एक आकर्षण या सम्मोहन पैदा करती है। एक दिन आकर्षण मुख्य हो जाता है, आवश्यकता गौण हो जाती है।

भोग की प्रकृति

आचार्य पूज्यपाद ने बहुत मार्मिक लिखा है—

प्रारंभे तापकान् प्राप्तौ अतृप्तिप्रतिपादकान्।
अंते सुदुस्त्यजान् कामान्, कामं कः सेवते सुधीः॥

काम की तीन स्थितियां बनती हैं—ताप, अतृप्ति और दुश्त्याज्यता। प्रारम्भ में पदार्थ ताप देता है। भोगकाल में उसका परिणाम होता है अतृप्ति। इस अतृप्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का ही निर्दशन है वर्तमान के विकसित राष्ट्र। जो विकसित राष्ट्र कहलाते हैं, उन्होंने बहुत अर्जित किया है और यह सोचकर अर्जित किया है कि मानसिक तृप्ति होगी। किन्तु आज वहां इतनी अतृप्ति बढ़ गई है कि मानसिक शान्ति के लिए एक भटकाव शुरू हो गया है। विकसित देशों में लोग इधर-उधर दौड़ लगा रहे हैं कि कहीं से मानसिक शान्ति मिले। अतृप्ति पुनः सेवन के लिए विवश करती है। फिर वह एक आदत बन जाती है। उसे छोड़ना मुश्किल हो जाता है। आदमी जानता है—आइसक्रीम खाना आवश्यक नहीं है किन्तु उसके प्रति आकर्षण होता है। व्यक्ति उसके लिए प्रयत्न करता है। गरीब आदमी भी पैसा जुटाता है। एक बार खाने पर तृप्ति नहीं मिलती, फिर दूसरी बार खाता है और अन्त में छोड़ना कठिन हो जाता है। टान्सिल बढ़ जाए, दांत खराब हो जाए या कुछ भी हो जाए, उसे छोड़ा नहीं जा सकता। यही बात शराब की है। पहले-पहले शौकिया तौर पर शराब का सेवन शुरू करता है। फिर यही अतृप्ति उसे इसका गुलाम बना देती है, एक स्नायविक आदत बन जाती है और उसका परिणाम भोगना ही पड़ता है।

जोधपुर से सेना के एक अधिकारी का पत्र मिला। उसने लिखा था—आचार्यवर! सेना में बड़े स्थान पर रहा। अब मैं सेवामुक्त हूं। शराब की आदत ने मेरे शरीर को जर्जर बना दिया है। छोड़ने का प्रयत्न करने पर भी छोड़ नहीं पा रहा हूं। आप कोई ऐसा मार्गदर्शन दें, जिससे मैं इस लत से छुटकारा पा सकूं।

सचमुच आदत छोड़ पाना बहुत मुश्किल होता है। जो सुधी हैं, विद्वान् हैं, चिन्तनशील हैं, वे प्रारम्भ में ही अपनी आवश्यकता को सीमित कर देते हैं। संतुलित भोजन जीवन के लिए आवश्यक है, किन्तु असंतुलित भोजन या ज्यादा खाना आवश्यक नहीं है। प्रत्येक पदार्थ की आवश्यकता के संदर्भ में यही नियम है। वर्तमान स्थिति यह है—नियंत्रण या सीमाकरण को महत्व कम दिया जा रहा है।

भूख और आवश्यकता

पहले भूख के लिए आवश्यकता बनती है, फिर आवश्यकता भूख बन जाती है। भूख के लिए आवश्यकता को तो पूरा किया जा सकता है, किन्तु आवश्यकता की भूख को पूरा करने के लिए इस दुनिया में न कोई साधन है और न कोई शक्ति है। न आज का अर्थशास्त्री इसे पूरा कर सकेगा, न कोई शासन या उसका वित्त मंत्रालय आवश्यकता की भूख को मिटा सकेगा। जिसके आवश्यकता की भूख जग जाती है, वह कभी दुःख से मुक्त नहीं हो सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियंत्रित आवश्यकता वाला समाज कभी दुःखी नहीं होता। न तो कोई इतना अमीर बनता है कि दौलत का पहाड़ खड़ा कर ले, न इतना बड़ा गढ़ा बनाता है, जो खाली पड़ा रहे। जिस समाज में आवश्यकता, इच्छा और उपभोग का सीमाकरण है, वह समाज कभी भूखा नहीं रहता। वह भूखा रहता है, जिसमें इच्छा, आवश्यकता और उपभोग का अनियंत्रण होता है, ज्यादा ऊंचाई और नीचाई होती है।

मौलिक मनोवृत्ति

भगवान् महावीर के समय के समाज की चर्चा करें। उन्होंने जिस व्रती समाज का निर्माण किया था, उसमें स्वामित्व और उपभोग—दोनों का सीमाकरण था। स्वामित्व एक मौलिक मनोवृत्ति है। मनोविज्ञान के संदर्भ में हम स्वामित्व की मीमांसा कर सकते हैं। मैक्डूगल आदि मानसशास्त्रियों ने मौलिक मनोवृत्तियों का एक वर्गीकरण किया। महावीर ने मनोवृत्ति का स्वरूप बताते हुए कहा—मनुष्य की एक ही मनोवृत्ति है और वह है अधिकार की भावना, परिग्रह या संग्रह की भावना। सब कुछ अधिकार की भावना से ही हो रहा है। दूसरी मनोवृत्तियां उसकी उपजीवी हैं। यह अधिकार की मनोवृत्ति मनुष्य में ही नहीं, छोटे से छोटे जीव-जन्तुओं और पेड-पौधों में भी होती है। आचार्य मलयगिरि ने इस ममत्व और अधिकार की भावना को समझाने के लिए अमरबेल का उदाहरण दिया। अमरबेल प्रारम्भ में किसी पेड़ का सहारा लेकर ऊपर चढ़ती है। फिर वह समूचे पेड़ पर अपना आधिपत्य जमा लेती है, उस पर छा जाती है और धीरे-धीरे उसे खा जाती है। अधिकार की भावना मधुमक्खी में भी होती है, एक चींटी में भी होती है और छोटे-बड़े सभी प्राणियों में होती है। छोटे से छोटा प्राणी भी अपने लिए संग्रह करता है। अधिकार की उसमें मौलिक मनोवृत्ति होती है।

व्रती समाज का सूत्र

वर्तमान में साम्यवाद और पूंजीवाद के संदर्भ में स्वामित्व के अनेक रूप बन गए हैं—निजी स्वामित्व, सार्वजनिक स्वामित्व और सामूहिक स्वामित्व।

व्रती समाज का पहला सूत्र बना—स्वामित्व का सीमाकरण हो। व्यक्तिगत स्वामित्व सीमित होना चाहिए। व्रती समाज के दस प्रमुख लोग थे, सबके सब सम्पन्न थे। उन सबने व्यक्तिगत स्वामित्व का सीमाकरण किया। अर्थ प्राप्ति की लालसा असीम है, आदमी कहां तक जाएगा? सीमा का विवेक तो होना ही चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ की अभीप्सा को हम तीन आवस्थाओं में देखें—

- न्यूनतम
- अधिकतम
- असीम

न्यूनतम स्वामित्व

जीवन चलाने के लिए जितना अपेक्षित होता है, वह न्यूनतम आवश्यकता कही जा सकती है। यह न्यूनतम स्वामित्व की सीमा है। रोटी, कपड़ा, मकान—ये न्यूनतम स्वामित्व के अन्तर्गत आते हैं।

अधिकतम स्वामित्व

अधिकतम को अच्छा नहीं कहा जा सकता। फिर भी उसकी एक सीमा है। खादी की एक धोती या साड़ी से भी काम चल सकता है। दो हजार, दस हजार और पचास हजार की साड़ी से भी काम नहीं चलता। समाचार पत्रों में पढ़ा—करोड़ों रुपए की ड्रेस लोग रखते हैं। न्यूनतम खादी का एक कुर्ता, धोती और टोपी—जीवन इतने से चला जाता है। गांधी का उदाहरण सामने है। उन्होंने तो मात्र एक धोती से ही काम चला लिया। आज के लोग इस बात को नहीं समझ पा रहे हैं कि इन सादे और सीमित वस्त्रों में कितनी शान्ति और सहूलियत रहती है। कीमती वस्त्र पहनते ही सबसे पहले भय लगना शुरू हो जाता है। शरीर पर पोशाक सवार होते ही भय भी सवार हो जाता है। गन्दे हो जाने का भय, कट-फट जाने का भय, सिमट-सिकुड़ जाने का भय, चमक-दमक कम हो जाने का भय—ऐसे अनेक भय सताने लगते हैं।

भय को पैदा करती है अतिरिक्तता

एक आदमी को भय बहुत लगता था। वह किसी मांत्रिक के पास गया, अपनी समस्या बताई। मांत्रिक ने एक ताबीज बनाकर उसे देते हुए कहा—इसे पहन लो, फिर तुम्हें किसी तरह का भय नहीं लगेगा। कुछ दिन बाद वह फिर मांत्रिक के पास आया। मांत्रिक ने पूछा—क्यों, अब तो ठीक हो? भय तो नहीं लगता? उसने कहा—और किसी बात का भय नहीं लगता किन्तु एक डर बना रहता है कि ताबीज कहीं खो न जाए।

जब कभी व्यक्ति अतिरिक्त उपभोग करता है, सबसे पहला भय इस बात का होता है कि कहीं वह खराब न हो जाए। अतिरिक्त आभूषण पहनते ही यह भय सवार हो जाता है कि कहीं भूल से गिर न जाए, कोई चुरा न ले, कोई छीन न ले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक अतिरिक्तता के साथ भय बराबर बना रहेगा। अधिकतम का सीमाकरण इस अतिरिक्तता के भय को स्वल्प कर देता है।

असीम लालसा

असीम में कहीं कोई सीमा नहीं होती। लाख, करोड़, अरब, खरब के आगे भी पाने की लालसा का कहीं अन्त नहीं होता और यह असीम लालसा मनुष्य के मन को अशांत बना देती है, तनाव से भर देती है।

सीमाकरण का सूत्र

महावीर द्वारा निर्मित समाज सम्पन्न समाज था। वह गरीब और दरिद्र समाज नहीं था पर सीमाकरण के विवेक के समृद्ध था। उस समय कौटुम्बिक व्यवस्था में एक परिवार में सैकड़ों-सैकड़ों लोग होते थे। आनन्द श्रावक का परिवार भी एक ऐसा ही परिवार था। उसने सीमाकरण किया—चार करोड़ स्वर्ण मुद्राएं ब्याज में लगी रहें, चार करोड़ स्वर्ण मुद्राएं निधान (भूमिगत) में रहें। इससे अधिक रखने का उसे त्याग था। इतनी भूमि, इतना भवन, इतना व्रज (गौशाला) रखूंगा। इससे अधिक कुछ नहीं रखूंगा। संग्रह की एक निश्चित सीमा बन गई।

नियंत्रण के दो सूत्र

महावीर ने कहा—अर्जन का, संग्रह का कोई नियम नहीं बनाया जा सकता, अधिकतम का कोई नियम नहीं बनाया जा सकता। हो सकता है—एक व्यक्ति उससे अधिक सीमा कर ले। महावीर ने अधिकतम को दो ओर से नियंत्रित कर दिया।

पहला नियंत्रण था—अर्जन में साधन-शुद्धि का विचार।

दूसरा नियंत्रण था—व्यक्तिगत उपभोग का सीमाकरण।

महावीर ने उपभोग की एक सूची बना दी। ऐसी सूची, जो आज तक किसी अर्थशास्त्री ने नहीं बनाई। उपासक-दशा सूत्र में दस सूत्र हैं, जिसमें उस समय के दस प्रमुख लोगों का वर्णन है। उसमें दी गई उपभोग सूची का अगर आज अनुपालन हो तो गरीबी की समस्या का अपने आप समाधान हो जाएगा। उस सूची के कुछ सूत्र ये हैं—

- वस्त्र-परिमाण
- दंतवन-परिमाण
- द्रव्य-परिमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- जल-परिमाण
- वाहन-परिमाण

आदि-आदि

एक व्रती यह संकल्प करता है—इतने से ज्यादा वस्त्र मैं अपने पास नहीं रखूंगा। एक धोती और एक उत्तरीय—इससे ज्यादा वस्त्र का एक साथ उपभोग नहीं करूंगा। शरीर के प्रक्षालन हेतु मात्र एक तौलिए से ज्यादा नहीं रखूंगा। यह सीमाकरण है उस समय के करोड़ों स्वर्ण मुद्राओं में स्वामी का।

वह जल का भी परिमाण करता है—इतने से ज्यादा पानी का उपयोग मैं नहीं करूंगा। पर्यावरण की समस्या उस समय नहीं थी, न ही उसके लिए कोई उपक्रम था किन्तु इस बात का भान था कि पर्यावरण की समस्या आगे चल कर कभी भी पैदा हो सकती है। आज जो यह समस्या विकट रूप धारण कर चुकी है और भविष्य में इसके विकटतम रूप धारण करने की संभावना व्यक्त की जा रही है। इससे निपटने का कोई भी उपाय विशेष कारगर नहीं हो रहा है। पानी का जितना दुरुपयोग आज हो रहा है, शायद पहले कभी नहीं हुआ होगा। भविष्य में यह जल संकट कितना त्रासद सिद्ध होगा, कहा नहीं जा सकता। एक व्रती व्यक्ति जल का सीमाकरण करता है—इतने घड़ों से ज्यादा जल का उपयोग स्नान हेतु नहीं करूंगा।

दतौन के भी सीमित उपयोग की बात कही गई। आज स्थिति यह है—दतौन के लिए छोटी-सी टहनी की जरूरत है तो नीम के पेड़ की पूरी डाल की काट ली जाएगी।

आश्रम में ठहरी एक विदेशी महिला से गांधीजी ने कहा—नीम की लकड़ी लाओ, दतौन करना है। महिला गई और पूरी डाल तोड़कर ले आई। गांधी जी ने उसे इतना कड़ा उपालम्भ दिया, जैसे उसने लाख रुपये खो दिए हों। वहां बैठे लोग बोले—बापू! इतनी छोटी-सी बात के लिए आपने इस महिला को इतना लताड़ दिया। इतने सारे नीम के पेड यहां खड़े हैं, दतौन समाप्त तो नहीं हो गया? गांधीजी ने कहा—'अकेला गांधी ही नहीं है, सारी दुनिया है दतौन करने वाली। इस तरह सब करने लगेंगे तो नीम के पेड का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।'

महावीर की सूची का एक व्रत है—**'दंतवण विहिपरिमाणं'**—दंतवन की विधि का परिमाण।

एक व्रत है **'पुक्खविहिपरिमाणं'**—पुष्प की विधि का परिमाण।

एक व्रत है **'फल विहिपरिमाण'**—फल की विधि का परिमाण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक व्रत है **'द्रव्य परिमाण'**। खाद्य वस्तुओं का सीमा करना।

आर्थिक विषमता का समाधान सूत्र

इन सब वस्तुओं का सीमाकरण है महावीर की सूची में। आज का सम्पन्न समाज यदि उस काल के व्रती समाज का इन सारी वस्तुओं के उपभोग के अनुकरण करे तो शायद अपने आप आर्थिक विषमता की समस्या हल हो जाएगी। अकेले आनन्द श्रावक ने ही इसका पालन नहीं किया, पांच लाख व्यक्तियों ने इस सूची का जीवन भर के लिए अनुकरण किया। अगर आज पांच लाख लोगों का वैसा ही एक कम्यून बन जाए तो सारी दुनिया के लिए एक अनुकरणीय बात होगी। पर्यावरण की समस्या, गरीबी की समस्या, उपभोग की समस्या और उत्पादन की समस्या को एक सही और सटीक समाधान मिल जाएगा।

चौदह नियम

आजीवन अनुकरणीय सूची के अतिरिक्त एक सूची वर्तमान की, आज की बनानी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति यह सोचे—आज मैं किस वस्तु का उपभोग करूं। प्रतिदिन की सूची बने। जैन साहित्य में चौदह नियम विश्रुत है। उसका एक नियम है—मुझे आज पूरे दिन में पांच द्रव्य या इतने द्रव्य से अधिक नहीं खाना है। इस तरह का एक सीमाकरण होना चाहिए। यह प्रतिदिन के भोजन की सीमा बहुत आवश्यक है। प्राकृतिक चिकित्सक कहते हैं—अगर स्वस्थ रहना है तो भोजन में एक से अधिक अनाज मत खाओ। गेहूं खाना है तो गेहूं खाओ। चावल खाना है तो चावल खाओ। बाजरी खाना है तो बाजरी खाओ। दो अनाज एक साथ मत खाओ। एक अनाज खाओ। इससे पाचन ठीक होगा। यह संयम की दृष्टि से नहीं कहा गया है, पाचन और स्वास्थ्य की दृष्टि से कहा गया है।

ज्यादा चीजें भी एक साथ मत खाओ। कलकत्ता के एक प्रसिद्ध चिकित्सक हैं डाक्टर गांगुली। वे गुरुदेव के दर्शन करने आए। बातचीत के दौरान डॉ० गांगुली ने कहा—यदि स्वस्थ रहना है तो रोटी, थोड़ी-सी दाल, एक सब्जी, एक फल—इतना ही भोजन होना चाहिए। इसके अतिरिक्त और किसी चीज की आवश्यकता नहीं है। पहले राजा के भोजन को राजशाही भोजन कहा जाता था। बीमारियां भी उस समय राजशाही थी। टी० बी० की बीमारी का नाम ही राजयक्ष्मा था। यह बीमारी बड़े लोगों को होती थी, गरीबों के पास यह बीमारी फटकती ही नहीं थी। आज तो हर आदमी राजशाही हो गया, राजशाही बीमारियां भी आम हो गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेक हैं सीमाकरण के सूत्र

वाहन का भी सीमाकरण करें—'आज मैं इतने से अधिक वाहन का प्रयोग नहीं करूंगा। इतनी बार से अधिक वाहन का प्रयोग नहीं करूंगा।' पदत्राण का भी सीमाकरण करें—'मैं इतने से ज्यादा जूते-चप्पल का प्रयोग नहीं करूंगा।'

यात्रा का सीमाकरण करें—'आज मैं सौ किलोमीटर की सीमा से बाहर नहीं जाऊंगा।' यदि यह विवेक जग जाए तो आज जिस तरह से यात्रा में ऊर्जा और ईंधन का अपव्यय हो रहा है, उस पर काफी अंकुश लग जाए। व्यक्ति घर से दस कदम दूर किसी काम से जाता है और पूरे बाजार का चक्कर लगा आता है। निरुद्देश्य और निष्प्रयोजन यात्रा करता रहता है। आधुनिक साधनों ने तो दुनिया को इतना छोटा बना दिया है कि प्रातः प्रस्थान कर आदमी देश के किसी भी कोने में जाकर शाम को पुनः घर आ सकता है।

उपभोक्तावाद का परिणाम

समाज के ये दो चित्र स्पष्ट हैं—अनियन्त्रित उपभोग वाला समाज और नियंत्रित उपभोग वाला समाज। हिंसा और अशान्ति तथा अहिंसा और शान्ति—इन दोनों के सन्दर्भ में चिन्तन करें तो स्पष्ट होगा—अनियन्त्रण ने हिंसा, स्पर्धा, ईर्ष्या और आतंक को जन्म दिया है, अशान्ति और शोषण को जन्म दिया है। जहां उपभोग अधिक है, उपभोक्तावादी धारणा है, वहां शोषण अनिवार्य है। नियन्त्रित उपभोग वाले समाज ने न तो किसी का शोषण किया, न किसी को सताया। वह अपनी सीमा में रहा, उसने सीमा का अतिक्रमण नहीं किया।

फ्रांसीसी विचारक ज्यां बोद्रियो ने आधुनिक उपभोक्तावाद की मीमांसा करते हुए लिखा—'पहले वस्तु आती है तो वह सुख देने वाली लगती है। अन्त में वह दुःख देकर चली जाती है। पहले वह भली लगती है, किन्तु अन्त में बुरी साबित होती है।'

भारतीय दर्शन का चिन्तन रहा—एक वस्तु आपातभद्र होती है और परिणाम विरस। भोगवादी प्रकृति का विश्लेषण करते हुए कहा गया—

इक्षुवद् विरसाः प्रान्ते, सेविताः स्युः परे रसाः।

इक्षु का सेवन बड़ी मिठास देता है किन्तु अन्त में उसके छिलके में कोई रस नहीं रह जाता, वह नीरस हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुख कहां है?

यही प्रकृति उपभोक्तावाद की है। बाजार में सजी हुई तड़क-भड़क वाली वस्तुएं, जो उपभोक्ताओं को ललचा रही हैं, अपने जाल में फंसा रही हैं, वे एक दिन इक्षु की तरह विरस हो जाएंगी। एक महिला ने आज पांच सौ रुपए की आकर्षक साड़ी खरीदी। पड़ोस में ही दूसरी महिला ने हजार रुपए की उससे भी अधिक अच्छी साड़ी खरीद ली। पांच सौ रुपए की साड़ी ने जो सुख दिया, वह विलीन हो गया। एक व्यक्ति ने हजार रुपए में घड़ी खरीदी। दो दिन बाद उसके मित्र ने दो हजार की घड़ी खरीद कर बांध ली। जो व्यक्ति हजार रुपए की घड़ी खरीद कर सुख और संतोष का अनुभव कर रहा था, वही तत्काल दु:खी बन जाएगा। समय दोनों घड़ियां ठीक बता रही हैं, किन्तु दो हजार रुपए वाली घड़ी हजार रुपए की घड़ी वाले व्यक्ति को दु:खी बना देती है।

प्रश्न उभरता है—आज का उपभोगवादी दृष्टिकोण मनुष्य को सुखी बना रहा है या दु:खी बना रहा है? इस सचाई को समझ लें तो सीमाकरण की बात और उसका औचित्य हमारी समझ में आ जाएगा।

मोहपाश से छूटें

महावीर ने अपने व्रती समाज के लिए व्यक्तिगत स्वामित्व का सीमाकरण और उपभोग का सीमाकरण—ये दोनों दर्शन दिए। इन्हीं दोनों के आधार पर समाज का निर्माण किया। फलत: वह समाज सुखी, स्वस्थ और शान्त जीवन जीता था। आज अपेक्षा है—हमारे वर्तमान के अर्थशास्त्री और वर्तमान के उपभोक्तावादी लोग उस सत्य का साक्षात् करें, केवल सम्मोहन में न जाएं। आज का उपभोक्तावादी दृष्टिकोण एक प्रकार का सम्मोहन बन गया है, हिस्टीरिया की बीमारी बन गया है। सम्मोहन करने वाला जैसा नचाएगा, उपभोक्ता वैसा ही नाचेगा। आज का उपभोक्ता बाजार और विज्ञापनों के हाथ की कठपुतली है। इस मोहपाश से छूटे तो समाज अधिक सुखी और शान्तिपूर्ण जीवन जीने वाला समाज बन सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्यावरण और अर्थशास्त्र

आधुनिक अर्थशास्त्र समृद्धि का अर्थशास्त्र है। योरोपीय आर्थिक समुदाय के प्रतिनिधि डॉ० मैल्सहोल्ड ने कहा—'पीछे लौटने का प्रश्न ही नहीं है, हमें और आगे बढ़ना है। धनी बने हैं, और अधिक धनी बनना है। समृद्धि प्राप्त की है, अभी और अधिक समृद्धिशाली बनना है। पर्यावरण की समस्या है, उसका समाधान हम खोजेंगे। ऊर्जा की समस्या है, उसका भी समाधान हम खोजेंगे। अगर सामान्य रियेक्टर से काम नहीं चलेगा तो फास्ट ब्रीडर रियेक्टर का प्रयोग करेंगे। कोई भी समस्या ऐसी नहीं है, जिसका समाधान न हो। किन्तु हमें आगे बढ़ना है, और अधिक धनी बनना है।'

धनी बनने का शास्त्र

समृद्धि का यह अर्थशास्त्र अधिक से अधिक धनी बनने का अर्थशास्त्र है। यह अवधारणा इसलिए बनी है कि मनुष्य को केवल भौतिक मान लिया गया। कहा जा रहा है—मनुष्य केवल प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पैदा हुआ है। यदि उसकी आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं, उसे समृद्धि मिल जाती है तो फिर क्या शेष रहता है? उसके आगे जो कुछ करने को है, वह अर्थशास्त्र का विषय नहीं बनता। शायद अर्थशास्त्र को जीवन के अन्य पक्षों से कट कर दिया गया। वस्तुतः समाजशास्त्र हो या मानसशास्त्र, अर्थशास्त्र हो या राजनीतिशास्त्र—सब परस्पर जुड़े हुए हैं। केवल एक पहलू पर विचार करें और शेष सारे पहलुओं की उपेक्षा कर दें तो कभी सही समाधान नहीं मिल पाएगा।

स्वार्थ-सापेक्ष सामाजिक

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आधुनिक अर्थशास्त्र का मुख्य लक्ष्य रहा है—सबको रोटी मिले, कपड़ा, मिले, मकान मिले, कोई भूखा न रहे। इसके लिए पूंजीवाद ने एक प्रेरक तत्त्व खोजा—मनुष्य स्वार्थी है। स्वार्थ की प्रेरणा मिलेगी तो वह आगे बढ़ेगा। साम्यवाद ने प्रेरक तत्त्व यह खोजा—मनुष्य सामाजिक प्राणी है, समाज उसके लिए एक प्रेरणा है। ये दोनों एकांगी दृष्टिकोण हैं। मनुष्य स्वार्थी है, यह सच है, किन्तु वह केवल स्वार्थी नहीं है, सामाजिक भी है। मनुष्य समाजनिष्ठ है, यह भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सच है, किन्तु वह केवल समाजनिष्ठ नहीं है, स्वार्थी भी है। स्वार्थी और समाज-निष्ठ—दोनों का समन्वय होता तो नए अर्थशास्त्र का निर्माण होता। उसमें न केवल स्वार्थ की प्रेरणा होती, न केवल सामाजिक प्रेरणा होती, किन्तु दोनों का योग होता और वह योग वर्तमान समस्याओं का समाधान बनता।

सुविधा, शान्ति और सुख

यह एक तथ्य है—वर्तमान अर्थशास्त्रीय अवधारणा ने मनुष्य को अर्थ-सम्पन्न तो बनाया है, किन्तु सुखी कम बनाया है। सुविधा, शान्ति और सुख—यह त्रिपुटी है। सुविधा मिले, आवश्यकताओं की पूर्ति हो, मानसिक शान्ति और सुख भी मिले, ये तीनों हो तो पूरी बात होती है। इन तीनों की उपलब्धि कराने वाला अर्थशास्त्र ही आज अपेक्षित है। ऐसा अर्थशास्त्र, जो दूसरे के हित को विखण्डित न करे। जिससे अनेक सुविधाएं मिल जाएं, आवश्यकता की पूर्ति खूब हो जाए, किन्तु मन की शान्ति भग्न हो जाए, वह अर्थशास्त्र पर्याप्त नहीं होता। सुख भी मिले, शान्ति भी मिले, सुविधा भी मिले तो एक परिपूर्ण बात बनती है और यह अनेकान्त दृष्टिकोण से ही संभव है।

आधुनिक अर्थशास्त्र ने सम्पन्नता का सिद्धान्त रखा और सम्पन्नता की दौड़ शुरू हो गई। वर्तमान अर्थशास्त्र की जो संकल्पजा सृष्टि है, उसकी कुछ संतानें हैं—उद्योग, यंत्रीकरण और शहरीकरण। सृष्टि का एक पुत्र है उद्योग। जितना उद्योग बढ़ेगा, उतनी सम्पन्नता बढ़ेगी। फलस्वरूप औद्योगिक दौड़ शुरू हो गई, अनेक राष्ट्र औद्योगिक राष्ट्र बन गए, अमीर बन गए, बहुत सम्पन्नता अर्जित कर ली। उद्योग के साथ यंत्रीकरण बढ़ा और यंत्रीकरण के साथ शहरीकरण बढ़ा। उद्योग के साथ आजीविका जुड़ी और गांव के लोग शहर में जाने लगे। शहर फैलते गए, मल्टीस्टोरीज बिल्डिंग बनती गईं, साथ ही परिपार्श्व में झुग्गी-झोपड़ियों की लम्बी कतारें भी। स्वर्ग और नरक—दोनों एक साथ हैं। इस धरती पर स्वर्ग देखना है तो स्वर्ग का दृश्य तैयार है और नरक को देखना है तो झुग्गी-झोपड़ियों के रूप में वह भी तैयार है।

उद्योग से जुड़ी समस्याएं

उद्योग ने कुछ समस्याएं पैदा कीं, मनुष्य का ध्यान पर्यावरण की ओर गया—पर्यावरण दूषित हो रहा है, भूमि, जल और वायु—सब दूषित हो रहे हैं। समस्या यहां तक बढ़ गई है कि उस समस्या के समाधान के लिए बड़े और औद्योगिक राष्ट्रों का बोझ विकासशील राष्ट्रों पर पड़ रहा है। इस समस्या पर विचार करने के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रेयो पृथ्वी शिखर सम्मेलन की आयोजना की गई। उस सम्मेलन ने प्रदूषण की समस्या की गंभीरता को रेखांकित किया किन्तु समस्या आज भी विकट बनी हुई है।

भूमि का उत्खनन

भूमि का अतिरिक्त दोहन और उत्खनन हुआ है। मनुष्य अपनी सुविधा के लिए, आवश्यकता की पूर्ति के लिए भूमि का उत्खनन करता रहा है। यह कोई नई बात नहीं है। किन्तु इस बीसवीं शताब्दी में भूमि का जितना उत्खनन हुआ है, उतना अतीत में कभी नहीं हुआ। जितना दोहन पदार्थों का हुआ है, उतना अतीत में कभी नहीं हुआ। बहुत बार विकल्प आता है—वर्तमान पीढ़ी भूमि का इतना दोहन कर लेगी, इतना उत्खनन कर लेगी तो शताब्दी के बाद आने वाली पीढ़ी यही कहेगी—हमारे पूर्वज बिल्कुल नासमझ थे। उन्होंने हमें दरिद्र बनाकर छोड़ दिया। स्वयं सुविधा भोगते रहे और हमें विपन्नता के वातावरण में जीने के लिए विवश कर दिया। ऊर्जा के लिए पेट्रोल का, गैस का, धातुओं या कोयले का, इतना अधिक उत्खनन हो रहा है कि पता नहीं आने वाले सौ दो-सौ वर्षों में भूमि का क्या हो जाए? वैज्ञानिक यह बता रहे हैं—भूकम्प जैसी समस्याएं बढ़ जाएंगी, और भी दूसरी समस्याएं बढ़ जाएंगी। यद्यपि भूकंप का सही कारण भी ज्ञात नहीं हो सका है फिर भी अनुमान किया जा रहा है—यह समस्या अत्यधिक उत्खनन के कारण पैदा हुई है।

प्रदूषित जल

हमारे पर्यावरण का एक महत्त्वपूर्ण कारक है जल। वह भी दूषित हो रहा है। पीने के लायक पानी भी कम होता जा रहा है। उद्योगों के विषैले रासायनिक पदार्थ शहरों की शीवर लाइनें सीधे नदियों से जोड़ दी गई। समुद्री रास्ते से जा रहे जहाजो से करोड़ों टन तेल रिसता है। वह तेल का प्रवाह समुद्र के जल को दूषित बनाता है, फलस्वरूप समुद्री जन्तुओं का संहार होता है।

वायु का प्रदूषण

वायु भी इतनी दूषित हो गई है कि सांस के माध्यम से हमारे शरीर के भीतर जहर पहुंचा रही है। जो लोग दिल्ली के भीतरी भाग में रहते हैं, आई० टी० ओ० के आसपास रहते हैं, वे बताते हैं—यह प्रदूषण आंख में जलन, नाक में जलन और पूरे शरीर में जलन सी पैदा कर देता है। दिल्ली में लाखों-लाखों वाहन दिन-रात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दौड़ रहे हैं। उनके साइलेंसर से निकला घातक धुआं, जिसमें शीशे की मात्रा अन्य धातुओं की मात्रा से बहुत ज्यादा है, फेफड़ों में पहुंचकर आदमी के सम्पूर्ण शरीर को हानि पहुंचा रही है।

जीवन के प्रमुख तीन साधन हैं—मिट्टी, जल और वायु। ये तीनों प्रदूषित हो रहे हैं। इस प्रदूषण की ओर ध्यान गया है, इससे भी आगे ध्यान गया है कि ओजोन की छतरी में छेद हो रहा है। इससे तापमान बढ़ेगा, समुद्र का जलस्तर भी बढ़ेगा, पृथ्वी पर इतना खतरा बढ़ जाएगा कि इस पर रहना मुश्किल हो जाएगा।

छठा काल खंड

जैन आगमों में छठे आरे का वर्णन मिलता है। यह एक कालखण्ड है। अभी पांचवां कालखण्ड चल रहा है। छठां आरा प्रलयकाल होगा। उस समय ओजोन की छतरी छिद्र युक्त ही नहीं, पूरी ध्वस्त हो जाएगी और पराबैंगनी किरणें सीधे पृथ्वी पर मार करेंगी। पृथ्वी इतनी गरम हो जाएगी कि इस पर किसी प्राणी का जीवित बचना संभव नहीं होगा। प्राणी ही नहीं, वनस्पति तक जल कर राख हो जाएगी। हिमालय की गुफा में रहने वाले कुछ लोग शायद शेष रह जाएं पानी में कुछ मछलियां बच जाएं। दिन में आग बरसेगी और रात का तापमान शून्य से भी काफी नीचे हो जाएगा। छठे कालखण्ड का जो लोमहर्षक वर्णन मिलता है और वैज्ञानिकों द्वारा ओजोन छतरी के टूटने के जो दुष्परिणाम बताए जा रहे हैं, उसमें काफी समानताएं हैं।

भुला दिया दूसरा पक्ष

पर्यावरण के इस प्रदूषण में उद्योगों की मुख्य भूमिका है। उद्योगों में प्रयुक्त तेल और गैस ओजोन छतरी को विखण्डित कर रही है। इस गंभीर समस्या की ओर आज के वैज्ञानिकों का ध्यान गया है। मैन्सहोल्ड की भविष्यवाणी है—हम समाधान खोज लेंगे। किन्तु अभी तो समस्या जटिल ही हो रही है। एक समस्या का समाधान खोजते हैं और दूसरी नई समस्या पैदा हो जाती है। हम मान भी लें कि पर्यावरण की समस्या का समाधान कर लेंगे। अभी कालखण्ड बचा हुआ है, शायद पृथ्वी भी उतनी गरम न हो। पूंजीवादी विचारकों ने इस ऊर्जा और पर्यावरण सम्बन्धी समस्या का समाधान खोजने की बात कह दी, किन्तु उन्होंने मनुष्य के दूसरे पक्ष को भुला दिया। वह पक्ष है स्वास्थ्य का पक्ष। मानसिक स्वास्थ्य, भावात्मक स्वास्थ्य और शारीरिक स्वास्थ्य भी समस्या का एक पक्ष है।बढ़ती हुई हिंसा की समस्या भी एक पक्ष है। इन पर पूरा विचार नहीं किया गया। अगर इन पर एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साथ संतुलित रूप से विचार किया जाता तो केवल आगे बढ़ना है, पीछे नहीं लौटना है, सम्पन्न और अधिक सम्पन्न बनना है—इस प्रकार के उद्गार सामने नहीं आते।

बढ़ता मानसिक विक्षेप

आज शारीरिक स्वास्थ्य की समस्या भी विकट है। जिस प्रकार प्रदूषण बढ़ा है और जिस प्रकार रासायनिक द्रव्यों का छिड़काव हो रहा है, उससे मनुष्यों का शारीरिक स्वास्थ्य भी काफी प्रभावित हुआ है। शारीरिक स्वास्थ्य से भी ज्यादा मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित हुआ है। यदि हम पांच दशक, छह दशक पहले की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करें तो हमारे सामने यह निष्कर्ष आएगा—आज मानसिक विक्षेप ज्यादा बढ़ा है, मानसिक रोगों के अस्पताल ज्यादा खुले हैं। आत्महत्याओं का अनुपात बढ़ा है, तलाक की दरें बढ़ी है, सामाजिक अपराध बढ़े हैं। अपराध की रोकथाम के लिए भारी भरकम बजट विकसित राष्ट्रों को निर्धारित करना पड़ रहा है। विकसित राष्ट्रों का सिर्फ अपराध नियंत्रण पर जितना बड़ा बजट है, उतना छोटे, अविकसित राष्ट्र का पूरा बजट भी नहीं है। संहारक अस्त्र-शस्त्रों की समस्या भी बढ़ी है।

दूसरी दिशा में

इन सारी समस्याओं के संदर्भ में हम आधुनिक अर्थशास्त्र की अवधारणाओं को पढ़ें, तो लगेगा—रोटी, पानी आदि आवश्यक साधनों को जुटाने के लिए जो संकल्प लिया था, वह पूरा नहीं हो रहा है, दूसरी दिशा में जा रहा है। यदि सारा धन मनुष्य की भूख मिटाने में लगता तो आज कोई भूखा न रहता। वह स्वप्न पूर्ण नहीं हुआ, क्योंकि उसके साथ मानसिक समस्याओं का अध्ययन नहीं किया गया। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करना चाहता है, अपना अधिकार बनाए रखना चाहता है। उसके लिए किस तरह गुप्तचरी का जाल बिछाया जाता है, किस प्रकार प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्र के सामने समस्याओं पैदा की जाती हैं और किस प्रकार दूसरे पर आक्रमण किया जाता है, विकसित राष्ट्र गरीब या अविकसित, विकासशील राष्ट्र पर किस तरह आर्थिक प्रतिबन्ध लगाते हैं, ये सारी मानसिक समस्याएं हैं। अगर भौतिक समस्याओं के समाधान के साथ-साथ मानसिक समस्याओं को भी देखा जाता, इन पर ध्यान दिया जाता—भौतिक संपदा के साथ-साथ मानसिक समस्याएं कितनी बढ़ेंगी तो शायद अर्थशास्त्र का स्वरूप बदलता, उसकी अवधारणाएं भी बदलती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जटिल है भावात्मक समस्या

सबसे ज्यादा जटिल है भावात्मक समस्या। आर्थिक सम्पदा बढ़ाने के लिए लोभ को खुली छूट दी गई। जितना लोभ बढ़ाओ, आकांक्षा बढ़ाओ, उतना ही धन बढ़ेगा। इसका परिणाम यह आया—भावात्मक समस्याएं पैदा हो गई। एक सम्पन्न आदमी सम्पन्नतर और सम्पन्नतम बनना चाहता है। अधिक से अधिक सम्पन्न बनने की दौड़ है। संसाधन सीमित हैं। यदि असीम संसाधन होते तो शायद समस्या इतनी नहीं गहरती। असीम लालसा के लिए साधन भी असीम होने चाहिए लेकिन वे असीम नहीं हैं। अनंत इच्छा और अनंत संसाधन की एक युति बन जाती तो दोनों में कहीं कोई संघर्ष नहीं होता, टकराव नहीं होता। समस्या यह है कि आकांक्षा, इच्छा अथवा लालसा असीम है और पदार्थ ससीम।

हम स्थूल जगत में जी रहे हैं। सूक्ष्म जगत् हमारा बहुत विशाल है। यदि उसे पकड़ पाते तो शायद पूर्ति के साधन भी बहुत विस्तृत बन जाते। हम जिस हाल में बैठे हैं, उसमें भी असीम सूक्ष्म पदार्थ हैं। पदार्थ में जितने सूक्ष्म तत्त्व हैं, उन्हें पकड़ा जा सके तो दिल्ली, जो लगभग एक करोड़ की आबादी वाला शहर बनता जा रहा हैं, खाद्य की पूर्ति इस हाल जितनी जगह से की जा सकती है। बाहर कहीं से भी अनाज मंगाने की, दूसरी चीजें मंगाने की आवश्यकता ही न रहे। यह एक हाल पर्याप्त होता इतना विराट् है हमारा सूक्ष्म जगत् किन्तु वह हमारे काम नहीं आ रहा है। वह हमारी पकड़ से बाहर है। उसका उपयोग हम नहीं कर सकते। कुछ-कुछ ऐसे योगी हुए हैं, जो सूक्ष्म को पकड़ने लग गए थे। उन्हें वायुपक्षी कहा गया। उन्हें खाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। भूख लगती तो पोषक अन्न की जरूरत नहीं, थोड़ी-सी हवा ले लेते, पूर्ति हो जाती। वायुभक्षी हवा से काम चला देते थे, किन्तु वह शक्ति आज किसी में नहीं है।

उपयोगिता की दृष्टि

हम केवल स्थूल पदार्थ के आधार पर जी रहे हैं। जैन दर्शन का एक पारिभाषिक शब्द है— अनन्तप्रदेशी स्कंध। स्कंध दो प्रकार के हैं— अनन्त परमाणुओं से बना हुआ सूक्ष्म स्कंध और अनन्त परमाणुओं से बना हुआ स्थूल स्कंध ।जो अनन्त परमाणुओं से बना हुआ सूक्ष्म स्कंध है, वह भी हमारे काम नहीं आता। अनंत परमाणुओं से बना हुआ स्थूल स्कंध ही हमारे काम आता है। हमारे उपयोग की सीमा बहुत छोटी हो गई। अस्तित्व की सीमा इस विराट् ब्रह्माण्ड में बहुत विशाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। किन्तु उपयोगिता की दृष्टि से विचार करें तो हमारे काम आ सके, उसकी सीमा बहुत छोटी है।

जैन दर्शन में उपयोगिता की दृष्टि से इस पर बहुत सूक्ष्म विचार हुआ है। कर्मशास्त्र में कहा गया है— एक परमाणु स्कंध है, जो भाषा के लिए काम में आता है। हम बोलते हैं, तब पौद्गलिक स्कंधों को ग्रहण करते हैं। वह उसके लिए काम आ सकता है, खाने के लिए काम आ सकता है किन्तु कर्मबन्धु के लिए काम में नहीं आ सकता। कर्मबन्ध के लिए और अधिक गहरा स्कंध चाहिए। अनंत-अनन्त प्रदेश उसमें और मिल जाएं, तब वह हमारे काम में आता है।

सीमित हैं संसाधन

हमारी दुनिया उपयोगिता की दृष्टि से चलती है। श्वासोच्छ्वास के स्कंध, भाषा, के स्कंध, मनन के स्कंध, शरीर के स्कंध—ये सारे उपयोगिता में आने वाले स्कंध बहुत सीमित हैं। जो स्थूल स्कंध बाहरी द्रव्य बनते हैं, वे और भी सीमित हैं। असीम लालसा की पूर्ति के लिए इन सीमित संसधानों की उपस्थिति अपर्याप्त है और यही संघर्ष का कारण है। हर राष्ट्र अधिक से अधिक संसाधनों को प्राप्त करना चाहता है। एक विकसित राष्ट्र चाहता है—हमारी विकास की अवधारणा सफल बने। सफलता के शिखर पर जाने के लिए अनेक राष्ट्रों के संसाधनों का शोषण किया जाता है। एक शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र ऐसा कर लेगा, दो राष्ट्र ऐसा कर लेंगे, चार कर लेंगे, किन्तु शेष का क्या होगा? वे कैसे कर पाएंगे? उनके पास तो कुछ बचेगा ही नहीं। समस्या वैसी ही बनी रहेगी। इसलिए आज इस पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।

दो महत्त्वपूर्ण निर्देश

भगवान महावीर ने अपने व्रती समाज के लिए जो निर्देश दिए थे, उनमें दो निर्देश ये हैं—

- **वणकम्मे**—जंगलों की कटाई न हो।
- **फोडीकम्मे**—भूमि का उत्खनन न हो।

ये दोनों निर्देश पर्यावरण की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। वणकम्मे और फोड़ीकम्मे—ये दो शब्द नए अर्थशास्त्र की नींव बन सकते हैं। यद्यपि एक समस्या है—उस समय आबादी कम थी। आज बहुत बढ़ गई है। एक समय होता है आबादी बढ़ जाती है और एक समय आता है, आबादी घट जाती है। आबादी बढ़ी है इसलिए आवश्यकताएं भी बहुत बढ़ गई हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूख की चिन्ता कहां है?

पूंजीवादी अर्थशास्त्र का यही तो दर्शन है—आबादी बढ़ने पर विशाल कारखानों का जाल न बिछाएं तो उसकी आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया जा सकता। हमारी अनिवार्यता है बड़े कारखानों का निर्माण करना। इस तर्क में दम है। यह चिन्तन बिल्कुल बकवास नहीं है। किन्तु यह तर्क तब ज्यादा सार्थक होता, जब बड़े कारखानों में बड़े पैमाने पर कृषि और रासायनिक द्रव्यों का प्रयोग मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति में होता। यथार्थ यह है—बड़े कारखानों और उनके द्वारा प्राप्त होने वाली बड़ी सम्पत्ति का उपयोग उस आवश्यकता की पूर्ति में नहीं हो रहा है। उसका प्रयोग मनुष्य पर अपना अधिकार और प्रभुत्व जमाने की दिशा में ज्यादा हो रहा है। मनुष्य की भूख की चिन्ता होती तो परमाणु बम की दिशा में प्रस्थान नहीं होता। यह क्यों हुआ? यह कोई आवश्यकता की पूर्ति तो नहीं है? अन्तरिक्ष की ओर प्रस्थान क्यों हुआ है?

लोभ है पृष्ठभूमि में

विज्ञान ने सत्य को खोजा है, यह बात सत्य है किन्तु अधूरी बात है। महावीर ने सत्य की खोज के साथ यह निर्देश भी दिया—सबके साथ मैत्री करें। अगर सत्य की खोज के साथ यह सूत्र भी जुड़ा रहता तो न परमाणु अस्त्र बनाने की जरूरत होती और न दुनिया का इतना बड़ा बजट शस्त्र-निर्माण में लगता। मैत्री की बात छोड़कर केवल सामाजिक गरीबी, सामाजिक भूख मिटाने के लिए कितने बड़े-बड़े कल-कारखाने और बड़े पैमाने पर कृषि-उत्पादन का प्रयत्न और आयोजन चल रहा है। यह तर्क अपने आप में शून्य होता चला जा रहा है। वक्तव्य एक दिशा में है और गति दूसरी दिशा में हो रही है। भूमि पर, जल पर या आकाश में अपना प्रभुत्व स्थापित करना, बाजार पर प्रभुत्व स्थापित करना—सारा प्रयत्न इसी दिशा में हो रहा है। इन सब उपक्रमों के पीछे है लोभ। इसके परिणाम भी सामने आ रहे हैं। इसीलिए एक नया विचार सामने आया—आज पूंजीवादी और साम्यवादी अर्थशास्त्र मानव जाति के कल्याण के लिए नहीं है। अब नए अर्थशास्त्र की कल्पना करनी चाहिए।

अनेकान्त का मार्ग

समस्या यह है—युग इतना आगे बढ़ गया है कि अब दो हजार वर्ष, ढाई हजार वर्ष पहले के युग में उसे ले जाना असंभव है। गांधीजी सा सादा जीवन जीना बड़ा कठिन है। गांधीजी ने दो हजार वर्ष पहले का जीवन जिया था किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज विश्वविद्यालयी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति, अर्थशास्त्र की आधुनिक अवधारणाओं में पला-पुसा मानव वैसा जीवन जीने के लिए तैयार होगा, यह कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए एक मध्यम मार्ग का निर्माण आवश्यक है, जिससे वर्तमान की समस्याओं को भी समाधान मिले और आदमी को उस भयावह कालखण्ड में जीने के लिए बाध्य न होना पड़े। यह मार्ग अनेकान्त का मार्ग हो सकता है।

हम प्रेरणा को भी बदलें और दृष्टिकोण को भी बदलें। दृष्टिकोण का निर्माण जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हो। इसके लिए जिस अर्थशास्त्र की कल्पना की जा रही है, उसका पहला सूत्र होगा—प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति को प्राथमिकता। जब तक विश्व में मानव समाज का एक भी वर्ग भूखा है, तब तक शस्त्र निर्माण की दिशा में हमारा पग नहीं उठेगा, विलासिता पूर्ण पदार्थों के निर्माण के लिए हमारे कारखाने नहीं चलेंगे।

अनिवार्यता और विलासिता

हम अर्थशास्त्रीय दृष्टि से विचार करें। दो प्रकार की अवधारणाएं हमारे सामने आएंगी—एक अनिवार्यता और दूसरी विलासिता। अनिवार्यता या आवश्यकता वह है, जिसकी प्राप्ति होने पर सुख नहीं मिलता और अप्राप्ति में कोई दुःख नहीं होता। रोटी आवश्यकता है, मिली तो सुख नहीं होगा, बस भूख मिट जाएगी और न मिलने पर दुःख बहुत होगा। एक विलासिता की सामग्री है, प्रसाधन की सामग्री है, मिलने पर आदमी को बहुत सुख होता है किन्तु न मिलने पर कोई दुःख नहीं होगा। नए अर्थशास्त्र के निर्माण में यदि यह अवधारणा रहे—जब तक प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति न हो, तब तक विलासिता की साधन सामग्री का निर्माण नहीं होगा तो आज की भूखमरी और बेरोजगारी की समस्या का बहुत अंशों में समाधान हो जाए।

दाता और याचक का भेद

आज सहयोग की बात चल रही है। विकसित राष्ट्र विकासशील देशों को सहयोग दे रहे हैं। व्यवहार में तो यह बहुत अच्छी बात लगती है, उदारीकरण की बात लगती है, किन्तु आखिर इस बात को सब जानते हैं कि दाता और याचक का भेद बराबर बना रहेगा। संस्कृति के कवि ने बहुत सुन्दर लिखा है—

दातृयाचकयोः भेदः कराभ्यामेव सूचितम्

लेने वाला हाथ नीचे रहेगा और देने वाला हाथ ऊपर होगा। इस स्थिति को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उसके साथ कितने प्रतिबन्ध, कितनी शर्तें जुड़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाती हैं, बिल्कुल आर्थिक गुलामी की सी स्थिति बन जाती है। बौद्धिक सम्पदा पर भी प्रतिबन्ध लग जाता है।

एक संतुलन बने

इन सारी समस्याओं के संदर्भ में आज एक मध्यम मार्ग का अनुसरण बहुत जरूरी है। छोटे उद्योग, सबके पास अपना काम, कोई भी इतना बड़ा न हो कि जब चाहे अपने से निर्बल को दबा सके। एक आदमी के शक्तिशाली होने का मतलब है, कमजोरों पर निरन्तर मंडराता खतरा। एक संतुलन बने। इस प्रकार के सूत्र भगवान् महावीर की वाणी में मिलते हैं, क्योंकि उनका चिन्तन अनेकान्त से अनुप्राणित था। सबसे बड़ी बात है मानवीय अस्तित्व और मानवीय स्वतन्त्रता की। इस पर आंच न आए और आवश्यकताओं की पूर्ति भी हो जाए, ऐसे अर्थशास्त्र की आज परिकल्पना आवश्यक है। रोटी और आजादी, रोटी और आस्था—दोनों एक दूसरे का विखण्डन न करें, दोनों साथ-साथ चलें। पुराने जमाने में कहा जाता था—लक्ष्मी और सरस्वती दोनों साथ-साथ नहीं रहतीं। आज यह धारणा बदल गई है। दोनों एक साथ चल रही हैं। फिर ऐसा क्यों नहीं हो सकता? रोटी और आजादी भी एक साथ क्यों नहीं रह सकती? रोटी और आस्था—दोनों का योग क्यों नहीं हो सकता? ऐसे अर्थशास्त्र की आज बड़ी आवश्यकता है। मैं कल्पना करता हूं कि अनेकान्त का यह महान् अवदान मानव-जाति के लिए कल्याणकारी होगा और मानव-जाति अनेकान्त के मंत्रदाता भगवान् महावीर के प्रति स्वयं सहज श्रद्धाप्रणत होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गरीबी और बेरोजगारी

महावीर ने कहा—'**अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे**'—मनुष्य अनेक चित्त वाला है, नाना प्रकार की क्षमता वाला है। योग्यता में विभेद है। बौद्धिक क्षमता, व्यावसायिक क्षमता, अर्थार्जन की क्षमता, व्यवहार की क्षमता, सबमें समान नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न क्षमता वाला है, इसलिए समानता हमारा एक आदर्श हो सकता है, मौलिक स्तर पर समानता की बात हो सकती है। किन्तु व्यावहारिक स्तर पर, पर्याय के स्तर पर समानता की बात संभव नहीं है।

प्रश्न आर्थिक समानता का

महावीर ने कहा—**णो हीणे नो अइरित्ते**— कोई हीन नहीं है, कोई अतिरिक्त नहीं है।

यह निश्चयनय की वक्तव्यता है, अंतिम सत्य का निरूपण है। किन्तु जहां पर्याय का जगत् है, व्यवहार का जगत् है, वहां एक व्यक्ति हीन भी है, अतिरिक्त भी है। योग्यता सबमें समान नहीं होती। इसलिए आर्थिक समानता की बात एक यांत्रिक रूप में ही सोची जा सकती है, वास्तविकता के धरातल पर नहीं।

वर्तमान अर्थव्यवस्था के सामने चार प्रश्न हैं—

- गरीबी को मिटाना
- जनसंख्या की वृद्धि को रोकना
- पर्यावरण में सुधार करना
- बेराजगारी का उन्मूलन करना।

जनसंख्या

गरीबी और पर्यावरण के बीच में है जनसंख्या-वृद्धि। आबादी बढ़ती है तो गरीबी भी बढ़ती है, पर्यावरण भी दूषित होता है। सबसे पहली बात है जनसंख्या की वृद्धि पर नियंत्रण कैसे हो? इसके लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न किए गए, किए जा रहे हैं, किन्तु जनसंख्या की वृद्धि पर अंकुश नहीं लग पाया। आबादी निरन्तर बढ़ती जा रही है। कुछ वर्ष पहले हिन्दुस्तान की आबादी अस्सी करोड़ के लगभग थी। अब नब्बे करोड़ को भी पार कर रही है। कहा जा रहा है—हिन्दुस्तान इक्कीसवीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शताब्दी का स्वागत एक अरब तीस करोड़ की जनसंख्या के साथ करेगा। जब जनसंख्या बढ़ती है तब पदार्थ पर भी असर आता है, गरीबी और अभाव की समस्या भी उलझती है, पर्यावरण की समस्या भी जटिल बनती है।

क्यों बढ़ती है आबादी?

एक बड़ा प्रश्न रहा—आबादी की बढ़त कैसे रुके? आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व आबादी बहुत कम थी। आबादी के घटने-बढ़ने में भी कुछ कारण बनते हैं। प्रत्येक हानि और लाभ के पीछे महावीर ने चार कारण बतलाए—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। हानि और लाभ में ये चारों निमित्त बनते हैं। जैन साहित्य में उल्लेख है—भगवान ऋषभ के बाद तीर्थंकर अजित का समय ऐसा आया, जब आबादी सबसे ज्यादा बढ़ी। जनसंख्या वृद्धि में कालखण्ड भी निमित्त बनता है।

ऐसा लगता है—गरीबी और जनसंख्या में भी कोई निकट का सम्बन्ध है। गरीब के संतान ज्यादा होती है क्योंकि कुपोषण में आबादी ज्यादा बढ़ती है। विकसित राष्ट्रों में आबादी की बढ़त का अनुपात कम है, अविकसित और निर्धन राष्ट्रों में आबादी की बढ़त का अनुपात ज्यादा है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में एक प्रसंग आता है—दरिद्रता दुःखतर है और उसके साथ जुड़ा दुःख है संतान का आधिक्य। दारिद्रता की पीड़ा और संतति के आधिक्य की पीड़ा—दोनों ओर से आदमी पीड़ित होता है। जनसंख्या वृद्धि के अनेक कारण हो सकते हैं, किन्तु कालखण्ड का प्रभाव और कुपोषण—ये दोनों जनसंख्या वृद्धि के सबसे प्रमुख कारण बनते हैं।

अतीत : वर्तमान

ढाई हजार वर्ष पूर्व समस्या नहीं थी। गरीबी थी, कुछ अंशों में बेरोजगारी थी, किन्तु जनसंख्या अधिक नहीं थी। व्यवस्था ग्राम पर निर्भर थी। लोग गांव में ही काम चला लेते, वहीं सब कुछ बना लेते। गांव में ही सारी सामान्य आवश्यकताएं पूरी हो जाती। उस समय बीमारियां भी बहुत ज्यादा नहीं थी। सामान्य बीमारियों का जंगलों की जड़ी-बूटियों से ही इलाज हो जाता था।

वर्तमान कालखण्ड में आबादी भी बहुत बढ़ गई है। उसकी पूर्ति के साधन भी नहीं है। गांव लगभग खाली हो रहे हैं और बड़े-बड़े नगर बस रहे हैं। महानगर की जनसंख्या एक करोड़ से भी अधिक है। सब कुछ निर्भर है गांव और गांव के परिपार्श्व पर। ऐसी अवस्था में बेरोजगारी की समस्या बढ़ी है। काम बहुत है, किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्हें खोजने की सबका व्यावसायिक बुद्धि समान नहीं होती। इसलिए बेरोजगारी की बात सामने आती है।

भाग्यवादी अवधारणा

एक धारणा रही भाग्यवाद की। हिन्दुस्तान और एशिया महाद्वीप में तो यह भाग्यवाद की धारणा प्रगाढ़ रही है। आदमी यह सोचकर हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाएगा—परमात्मा की जैसी मरजी होगी, वैसा होगा या भाग्य में जैसा लिखा है, वैसा होगा, क्यों व्यर्थ में हाथ-पांव मारें? भाग्यवादिता की इस मनोवृत्ति ने गरीबी और बेरोजगारी की बढ़त में अपना योगदान दिया है।

महावीर अनेकान्तवादी थे, वे न केवल भाग्यवादी थे और न केवल पुरुषार्थवादी। उनके दर्शन में भाग्य और पुरुषार्थ—दोनों का समन्वय था। भाग्य भी काम करता है, किन्तु पुरुषार्थ में इतनी शक्ति है कि वह भाग्य को भी बदल सकता है। महावीर ने एक सूत्र दिया था—जैसा लिखा है, वैसा नहीं होगा। बहुत सारे दार्शनिक यह मानते थे—जैसा भाग्य में लिखा है, वैसा ही होगा। कोई इसे बदल नहीं सकता, कम ज्यादा नहीं कर सकता। किन्तु महावीर ने ऐसा सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया। उन्होंने कर्मवाद के नए सूत्र खोजे और कहा—भाग्य हमारी प्रवृत्तियों को संचालित करने का एक कारण तो है, किन्तु वह एकछत्र कारण नहीं है। उसे भी पुरुषार्थ के द्वारा बदला जा सकता है।

गरीबी और कर्म

हम यह मानकर न बैठें—गरीब के भाग्य में गरीबी लिखी है और अमीर के भाग्य में अमीरी लिखी है। व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से, अपने बौद्धिक बल और कर्तृत्व से अपार संपदा अर्जित कर सकता है। जिसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव अनुकूल नहीं मिला, बुद्धि की अनुकूलता नहीं रही, पुरुषार्थ भी अनुकूल नहीं हुआ, वह आदमी गरीब रह गया। इसका भाग्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। बहुत सारे लोग भाग्य के आधार पर इसकी व्याख्या करते हैं, किन्तु महावीर ने इसे कभी मान्य नहीं किया कि अमीरी या गरीबी कर्म से होती है। वास्तव में पदार्थ का योग होना बाह्य निमित्तों पर ज्यादा निर्भर है, वह अपने कर्मों पर निर्भर नहीं है।

जैनदर्शन में इस प्रश्न पर काफी गम्भीरता से चिन्तन हुआ है और आज भी कुछ विद्वान् इस प्रश्न पर विमर्श कर रहे हैं—धन मिलता है, वह कर्म से मिलता है या और किसी कारण से मिलता है। जहां तक हमने चिन्तन किया है, भाग्य का, कर्म का धन की प्राप्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका सम्बन्ध द्रव्य, क्षेत्र, काल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और भाव के साथ है। मध्य एशिया या अरब देशों का उदाहरण लें। जब तक पैट्रोल नहीं निकला तब तक वहां का वातावरण गरीबी का रहा। पैट्रोल निकलने के बाद उनकी स्थिति एकदम बदल गई। आज दुनिया के अमीर देशों में उनकी गिनती है। राजस्थान का एक जिला है—उदयपुर—राजसमन्द। जब तक वहां मार्बल नहीं निकला था, बहुत सम्पन्नता नहीं थी। मार्बल उद्योग के बाद आज वहां सम्पन्नता बढ़ गई है। वस्तुत: कर्म से इसका इतना सम्बन्ध नहीं है, जितना परिस्थिति और वातावरण से है। इसलिए महावीर की व्यवस्था में गरीबी और अमीरी को कर्म या भाग्य से नहीं जोड़ा जा सकता। यह सारा निर्भर है व्यावसायिक कौशल और कर्तृत्व-कौशल पर।

दुर्भिक्ष की समस्या

उस समय की एक त्रासदी थी दुर्भिक्ष। दुर्भिक्ष के समय विपदा आ जाती थी। बीसवीं शताब्दी में हम दुर्भिक्ष की भयंकरता की कल्पना नहीं कर सकते। बीसवां शताब्दी में इतने साधन बन गए हैं कि दुनिया के किसी भू-भाग में दुर्भिक्ष आए, अकाल की स्थिति रहे, तो किसी भी स्थान से अनाज की सप्लाई की जा सकती है। यातायात और संचार के साधन इतने सुलभ हैं कि यह कोई समस्या नहीं रही। उस काल में तो दुर्भिक्ष के कारण भयंकर स्थिति बन जाती थी। पास में धन होते हुए भी मरने के लिए विवश होना पड़ता था। बीसवीं शताब्दी में मनुष्य ने इतनी क्षमता पैदा कर ली है कि वह एक स्थान से किसी वस्तु को दूसरे स्थान पर सहजता से पहुंचा सकता है।

संसाधन किस दिशा में

विश्व की सारी सम्पदा, सारे संसाधन गरीबी को मिटाने में लगते तो आज स्थिति बहुत भिन्न होती, किन्तु बीच में व्यवधान आ गए। जो सम्पदा है, वह मानव को सुखी या सम्पन्न बनाने की दिशा में नहीं लगी, संहारक अस्त्रों के निर्माण में लगी। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से भयभीत हो गया। शस्त्रों की होड़ सी लग गई। अभी-अभी यू० एन० डी० पी० की जो रिपोर्ट आई है, उसके आंकड़ों को देखें तो पता चलेगा कि अर्थशक्ति और संसाधन किस दिशा में लग रहे हैं। आठ सौ मिलियन डालर प्रतिवर्ष सुरक्षा पर व्यय हो रहे हैं। अगर रुपयों में हिसाब करें तो चालीस लाख अस्सी हजार करोड़ या दो सौ अड़तालीस खरब रुपए सुरक्षा पर खर्च हो रहे हैं। मानव की सुरक्षा के लिए नहीं, अपनी भौगोलिक सुरक्षा के लिए इतना व्यय किया जा रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनी देश विकासशील देशों को मात्र पचास मिलियन की सहायता दे रहे हैं। यानी एक लाख पचपन हजार करोड़ रुपए सहयोग के रूप में दे रहे हैं। अब दोनों की तुलना सहज ही की जा सकती है। सहायता की राशि कितनी कम है और सुरक्षा पर व्यय की जाने वाली राशि कितनी ज्यादा है।

आर्थिक विकास : अपराध

मनुष्य इमोशनल प्राणी है। उसके भीतर क्रोध, अहंकार, लोभ, भय—ये सारे इमोशन काम कर रहे हैं। गरीबी मिटाने की भावना भी कभी-कभी जागती है, पर इससे भी ज्यादा प्रबल जो इमोशन हैं, वे हैं भय और वासना के, अधिकार और लोभ के। ये इतने प्रबल हैं कि करुणा की भावना, संवदेनशीलता की भावना उत्पन्न ही नहीं होने देते। यदि वह उत्पन्न भी होती है तो उसे मद्धिम कर देते हैं। यू० एन० डी० पी० की रिपोर्ट में बताया गया है—एक सौ तिहत्तर राष्ट्रों में इकोनामिक ग्रोथ में अमेरिका का आठवां नम्बर है। किन्तु अपराध, बलात्कार, हत्या, अपहरण आदि में अमेरिका नम्बर एक पर है। कुछ राष्ट्र है, जिनमें बलात्कार हत्याएं ज्यादा होती हैं। जर्मनी में पागलपन ज्यादा है। यह स्थिति विकसित राष्ट्रों की है।

ध्यान दे दोनों पर

हम जब तक आन्तरिक या भावात्मक स्थिति को साथ में नहीं जोड़ेंगे, तब तक गरीबी, बेरोजगारी और जनसंख्या वृद्धि की समस्या को सुलझाया नहीं जा सकेगा। केवल निमित्त और परिस्थिति पर चलें तो एकांगी दृष्टिकोण होगा और केवल आन्तरिकता पर चलें तो भी एकांगी दृष्टिकोण होगा। अनेकान्त की दृष्टि से दोनों का समन्वय करके चलें—मनुष्य भीतरी जगत् में क्या है और बाहरी जगत् में क्या है। भीतरी जगत् को भी बदलना है और बाहरी जगत् को भी बदलना है।

समाजवादी धारणा ने एक बड़ा काम किया था—पदार्थ के प्रति अनासक्ति का प्रयोग। बहुत अच्छी और सार्थक कल्पना थी—सम्पत्ति मेरी नहीं है, संपत्ति समाज की है, मेरा इस पर कोई अधिकार नहीं है। यह एक बहुत बड़ा महत्त्वपूर्ण दर्शन था और है। साम्यवाद का रूप चाहे कुछ भी बना हो, किन्तु साम्यवादी के पीछे जो एक चिन्तन था, धारणा थी, उसका महत्त्व कभी कम नहीं होगा।

महावीर के दर्शन और साम्यवाद की अवधारणा—दोनों की तुलना करें। महावीर कहते हैं—न मे माया, न मे पिया, न मे भाया—मां मेरी नहीं है, पिता मेरा नहीं है, भाई मेरा नहीं है। धन मेरा नहीं है, मकान मेरा नहीं है। भार्या मेरी नहीं है, लड़की मेरी नहीं है। साम्यवाद ने प्रयोग किया। एक बच्चा जन्मा और परिवार से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलग कर दिया गया। प्रारम्भ से ही यह संस्कार आ जाते हैं कि यह मेरा नहीं है। जब तक यह मेरापन रहेगा, व्यक्ति न्याय नहीं कर सकेगा, समाज के प्रति ईमानदार नहीं हो सकेगा। धन मेरी सम्पत्ति नहीं है, सब समाज का है, यह एक व्यापक दर्शन दिया था साम्यवाद ने।

यदि ऐसा होता

महावीर का दर्शन आत्मा तक सीमित रहा, अपने भीतर तक सीमित रहा और समाजवाद का दर्शन केवल बाहर तक सीमित रहा, सामाजिक परिवेश तक सीमित रहा। दोनों मिल नहीं पाए इसलिए बात पूरी नहीं बनी। अगर दोनों मिल जाते, भीतर का भी परिवर्तन होता—शरीर मेरा नहीं और बाहर का भी परिवर्तन होता, व्यवस्थागत परिवर्तन भी घटित होता—धन, सम्पदा आदि मेरे नहीं हैं तो शायद एक नया ही विश्व बनता। किन्तु ऐसा हुआ नहीं। दोनों को मिलाया नहीं गया। जहां समाजवाद ने 'यह मेरा नहीं है', इस सिद्धान्त को दण्डशक्ति के बल पर थोपा, वहीं महावीर का सिद्धान्त हृदय-परिवर्तन के आधार पर स्वीकृत हुआ, किन्तु वह एक धार्मिक धरातल पर स्वीकृत हुआ, सामाजिक व्यवस्था के धरातल पर स्वीकृत नही हुआ। अगर ये दोनों परिवर्तन संयुक्त रूप से लागू होते तो एक नई विश्व व्यवस्था का प्रादुर्भाव होता।

गरीबी और बेरोजगारी मिटने का कारण मुख्य रूप से यही है—इसके साथ केवल समाज-व्यवस्था है, राज्य-व्यवस्था है, दण्डशक्ति है, किन्तु आन्तरिक परिवर्तन नहीं है। यदि आंतरिक परिवर्तन भी होता तो शायद गरीबी की समस्या सुलझ जाती। महावीर ने संवेदनशीलता और करुणा को बहुत महत्त्व दिया था। सामाजिक प्राणी वह होता है, जो संवेदनशील होता है। जिसमें अपनी अनुभूति और दूसरों की अनुभूति का जोड़ होता है, वह दूसरों को भी अपने समान समझता है। अगर संवेदनशीलता का यह सूत्र कामयाब होता तो इतनी विशाल धनराशि संहारक अस्त्र-शस्त्र में न लगकर मानव की भलाई में लगती।

यू० एन० डी० पी० की रिपोर्ट

वर्तमान की स्थिति देखें। यू० एन० डी० पी० की रिपोर्ट के अनुसार विश्व में पांच अरब तीस करोड़ आदमी हैं। उनमें एक अरब तीस करोड़ धनी हैं या अमीर देशों में हैं और चार अरब आदमी निर्धन या विकासशील देशों में हैं। यह एक बहुत बड़ा अन्तर है। इसका अर्थ है—सतत्तर प्रतिशत लोग गरीब हैं। विश्व की आय का उन्नीस प्रतिशत मात्र निर्धनों को मिलता है। इक्यासी प्रतिशत अमीरों की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेब में जा रहा है। इतनी बड़ी असमानता की स्थिति में गरीबी मिटाने की बात हास्यास्पद-सी लगती है। गरीबी मिटाने की चाबी अमीर देशों के हाथ में है। वे चाहें तो गरीबी को मिटा दें, चाहें तो और बढ़ा दें। वे ऐसा क्यों चाहेंगे?

प्रभुत्व की वृत्ति

मनुष्य की एक भावात्मक प्रवृत्ति होती है प्रभुत्व की, स्वामित्व और अधिकार की। रावण ने इन्द्र के पास अपना दूत भेजकर कहलाया—मुझे तुम्हारे राज्य की जरूरत नहीं है। मैं केवल यही चाहता हूं कि तुम मेरे स्वामित्व को स्वीकार कर लो, मेरे अधीन बन जाओ। फिर तुम चाहे जो करो। अकबर भी राणा प्रताप से यही चाहता था—एक बार महाराणा उसे सम्राट् के रूप में स्वीकार कर लें। यह प्रभुत्व की भावना बहुत व्यापक है। जिनके पास आर्थिक साम्राज्य है, प्रभुसत्ता है, वे दूसरों पर अपना स्वामित्व स्थापित करना चाहते हैं। जो धनी बन गए, उनमें आपस में स्पर्धा है दूसरों का स्वामी बनने की। मानवीय संवेदना जागती तो ये अपराधिक स्थितियां विश्वव्यापी नहीं बनतीं।

गरीबी की रेखा

जो धनी बने हैं, उनकी स्थिति भी कम दुःखद नहीं है। अमीरी से पैदा होने वाली बीमारियां उन देशों को अपनी लपेट में ले चुकी है। अमीरी ज्यादा हो, बीमारियां कम हों, यह कभी सम्भव नहीं। संपदा के विकास के साथ-साथ बीमारी की समस्या भी बढ़ती है। उसके साथ भावात्मक रुग्णता आती है। अमीरी और बीमारी—इन दोनों को कभी अलग नहीं किया जा सकता। एक ओर अमीर बीमारी भुगत रहे हैं तो दूसरी ओर गरीब भी बीमारी भुगत रहे हैं। अपोषण और कुपोषण उनके स्वास्थ्य को लीलते जो रहे हैं। गरीब देशों में आज गरीबी की रेखा के नीचे जीने वाले रोगों का अनुपात बहुत बड़ा है। एक निर्धारण कर लिया—गांव में लोगों को चौबीस सौ कैलोरी मिले और शहरी आदमी को इक्कीस सौ कैलोरी मिले तो संतुलन बना रहेगा। इससे कम कैलोरी मिले तो वह गरीबी की रेखा से नीचे जीवन जीने वाली स्थिति होगी। आज गरीबी की रेखा के नीचे जीवन जीने वालों की संख्या गरीब देशों में, विकासशील देशों में बहुत ज्यादा है।

गांवों की स्थिति

बहुत वर्ष पहले की बात है। पूज्य गुरुदेव दिल्ली में विराज रहे थे। डा० राममनोहर लोहिया आए। लोहियाजी ने बातचीत के अनंतर कहा—महाराज! हमारे देश में आज पच्चीस-तीस करोड़ लोग ऐसे हैं, जिन्हें दो समय खाने को नहीं मिलता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपको सही स्थिति जाननी हो तो मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) को मेरे साथ गांव में भेजें। ये वहां चलकर स्वयं अपनी आंखों से गांव की स्थिति देखें।

वास्तव में यह स्थिति है—करोड़ों लोगों को भरपेट खाने को नहीं मिलता। एक अन्तर अवश्य है और वह यह है—प्राचीन समय में आदमी गरीबी या भूख से मर जाता था। आज उसे मरने नहीं दिया जाता दुःख भोगने के लिए जिन्दा रखा जाता है। कोई मरता है तो सरकार के लिए खतरा पैदा होता है, निन्दा-आलोचना होती है। वह मरने के लिए स्वतन्त्र नहीं है और गरीबी भोगते हुए जिन्दा रहने के लिए अभिशप्त है। यह स्थिति है आज के आदमी की। इस स्थिति को तब तक नहीं बदला जा सकता, जब तक महावीर के इस सिद्धान्त 'स्वामित्व का सीमाकरण करो' को स्वीकार नहीं कर लिया जाता।

संग्रह के परिणाम

आज के अर्थशास्त्रियों ने भी संग्रह के दो परिणाम बतलाए हैं—भूख और युद्ध। महावीर ने कहा—'संग्रह मत करो।' अगर संग्रह का सीमाकरण होता है तो गरीबी की समस्या सहज रूप से सुलझाई जा सकती है, बेरोजगारी की समस्या को भी सुलझाया जा सकता है। शेष रहती है जनसंख्या की समस्या। गरीबी कम होगी, पोषण ठीक मिलेगा तो जनसंख्या की समस्या भी नहीं रहेगी। मूल कारण है गरीबी और गरीबी का प्रतिफल है जनसंख्या की वृद्धि। विकसित राष्ट्रों की स्थिति देखें। वहां जनसंख्या बढ़ाने का प्रयत्न हो रहा है। रूस में उन माताओं को पुरस्कृत किया गया, जो अधिक संतान पैदा करती हैं। जहां चीन और हिन्दुस्तान में परिवार नियोजन के प्रयत्न हो रहे हैं, वहां जर्मनी और विकसित राष्ट्रों में परिवार बढ़ाने का उपक्रम हो रहा है।

अनुपात बढ़ रहा है

इस बात पर गम्भीरता से ध्यान दें—हम सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तन को बाह्य स्तर पर घटित करना चाहते हैं जबकि मनुष्य जीता है भीतर के स्तर पर। जब तक भीतर के स्तर का स्पर्श नहीं होगा, अन्तर्जगत को नहीं छुएंगे, तब तक समस्या का समाधान नहीं होगा। जब तक संग्रह, लोभ और स्वार्थ की वृत्ति को बढ़ाने की बात रहेगी, गरीबी भी बराबर रहेगी। आंकड़े बताते हैं—विकसित राष्ट्रों में, अमीर राष्ट्रों में गरीबी का अनुपात बढ़ रहा है। अमेरिका में सतरह प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा के नीचे जीने वाले हैं। यह अनुपात बढ़ता जा रहा है। क्योंकि वहां संपदा पर इतना कब्जा हो गया है कि दूसरों के लिए बहुत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम बचता है। जब तक यह कब्जा करने की बात, छीनने की बात रहेगी, तब तक समस्या का समाधान नहीं होगा।

नए मानव का सृजन

यदि हम कुछ होना चाहते हैं, कुछ पाना चाहते हैं या कुछ बनना चाहते हैं तो रास्ता दूसरा होगा। अगर संग्रह करना चाहते हैं तो रास्ता दूसरा होगा। ये दो भिन्न रास्ते हैं। इसलिए हम पुनर्विचार करें। अर्थशास्त्र को धर्मशास्त्र या अध्यात्मशास्त्र के परिपार्श्व में रखें। यह इसलिए आवश्यक है, जिससे अर्थशास्त्र अपने ढंग से संचालित हो, किन्तु धर्मशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र की छत्रछाया में संचालित हो। अर्थशास्त्र, मानसशास्त्र, अध्यात्मशास्त्र—इनको एकान्ततः काट कर न देखें। एक दूसरे पर एक दूसरे का जो प्रभाव है, उसे देखें, उसका अध्ययन करें, इस सचाई को जानें—कौन-सा शास्त्र किस शास्त्र को प्रभावित कर रहा है। ऐसा होगा तो सचमुच एक नए अर्थशास्त्र की परिकल्पना फलित होगी। उसे क्रियात्मक रूप देने के लिए नए मानव का सृजन करना होगा। नया मनुष्य ही आज की उलझनों का समाधान खोज पाएगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर, मार्क्स, केनिज और गांधी

सिद्धान्त और व्यक्तित्व, मंत्रदाता और मंत्र, सूत्रदाता और सूत्र—इन दोनों का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। सिद्धान्त की चर्चा करें तो सिद्धान्त के प्ररूपक की चर्चा करना भी आवश्यक है। सिद्धान्त के प्ररूपक की चर्चा करें तो सिद्धान्त की चर्चा करना भी आवश्यक है। सिद्धान्त की चर्चा करना सरल है, किन्तु सिद्धान्त के प्रतिपादक की चर्चा करना कठिन है। सिद्धान्त को अध्ययन के द्वारा जाना जा सकता है, किन्तु व्यक्ति को अध्ययन के द्वारा जाना जा सकता है, यह एकान्ततः कहना बड़ा कठिन है। व्यक्ति जितना दुर्गम होता है, सिद्धान्त उतना दुर्गम और दुर्बोध नहीं होता। आज तक जिन लोगों ने व्यक्ति को पहचानने का प्रयत्न किया है, उनका निर्णय कितना सही रहा है, मैं नहीं कह सकता। बहुत भूल होती है व्यक्तित्व को पहचानने में। भाव जगत् इतना गूढ़ है कि व्यवहार के आधार पर उसका सही आकलन नहीं कर सकते। यद्यपि मनोवैज्ञानिकों ने, व्यवहार मनोविज्ञान के अध्येताओं ने व्यवहार के द्वारा व्यक्ति को पहचानने का प्रयत्न किया है, किन्तु वह भी कितना सार्थक हुआ है, यह एक प्रश्न है। वस्तुतः कठिन काम है सिद्धान्त के आधार पर व्यक्ति की चर्चा करना। फिर भी व्यवहार के धरातल पर चर्चा करनी होती है।

चार व्यक्तित्व हमारे सामने हैं—

- भगवान् महावीर
- महात्मा गांधी
- केनिज
- कार्ल मार्क्स

इन्हें दो कोटियों में विभक्त किया जा सकता है। महावीर और गांधी—ये एक कोटि के व्यक्ति हैं। मार्क्स और केनिज—ये दूसरी कोटि के व्यक्ति हैं।

आध्यात्मिक व्यक्तित्व

महावीर शुद्ध आध्यात्मिक व्यक्तित्व हैं। बाहर और भीतर, व्यवहार और निश्चय—दोनों में आध्यात्मिक व्यक्तित्व हैं। गांधी के भीतर में आध्यात्मिक व्यक्तित्व हैं और बाहर में राजनीतिक व्यक्तित्व। गांधी ने इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए बहुत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बार कहा—'शुद्ध अर्थ में मैं आध्यात्मिक और धार्मिक व्यक्ति हूं। मैंने राजनीति को माध्यम बनाया है जनता के साथ आत्मीयता स्थापित करने के लिए। उसके लिए यह सबसे बड़ा माध्यम है, इसलिए इसे मैंने चुना है। किन्तु मेरी कोई भी राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति अध्यात्म से पृथक् नहीं हो सकती। अगर अध्यात्म से पृथक् है तो वह मेरे लिए कचरा है, धूलि है, किसी भी तरह से वह मेरे लिए उपयुक्त नहीं है, मुझे मान्य नहीं है।'

भौतिक व्यक्तित्व

मार्क्स और केनिज आध्यात्मिक व्यक्तित्व नहीं हैं। ये शुद्धरूप में आर्थिक व्यक्तित्व हैं, भौतिक व्यक्तित्व हैं। न आत्मा, न धर्म, न मोक्ष, कोई अपेक्षा नहीं। केवल पदार्थवादी व्यक्तित्व हैं। उन्होंने केवल उसी की चर्चा की है, उसी की चिन्ता की है।

दूसरा कोण

इन चारों को व्यक्तित्व के दूसरे कोण से देखें तो निष्कर्ष आएगा—

- महावीर अहिंसक क्रान्ति के पुरोधा हैं।
- गांधी अहिंसा समन्वित सर्वोदयी आर्थिक व्यवस्था के पुरोधा हैं।
- मार्क्स साम्यवादी आर्थिक क्रान्ति के पुरोधा हैं।
- केनिज पूंजीवादी आर्थिक क्रान्ति के पुरोधा हैं।

इन चारों के स्थूल व्यक्तित्व की पहचान हम इन शब्दों में कर सकते हैं।

छह पेरामीटर

किसी व्यक्ति को जानने के लिए हमें पेरामीटर का उपयोग करना होता है। इन चार व्यक्तित्वों की तुलना हम निम्नांकित मानदण्डों के आधार पर कर सकते हैं—

- अभिमुखता
- प्रेरणा
- साध्य
- साधन
- प्रयोजन
- स्वतन्त्रता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिमुखता

कौन व्यक्ति किस दिशा में जा रहा है, उसका मुख किधर है, इसके आधार पर उसके विषय में बहुत कुछ जाना जा सकता है।

महावीर आत्माभिमुख हैं। उनका मुख, उनकी दिशा अध्यात्म की ओर है। गांधी ईश्वराभिमुखी हैं। वैष्णव संस्कारों में पले-पुसे होने के कारण उन्होंने ईश्वर को सब कुछ माना। उनका एक सूत्र था— 'ईश्वर ही सत्य है।' किन्तु जैसे-जैसे दृष्टिकोण व्यापक बना, संपर्क व्यापक बना, श्रीमद् राजचन्द्र जैसे लोगों के संपर्क के कारण जैन धर्म का प्रभाव भी उन पर बहुत रहा। व्यापक संपर्क और प्रभावों के कारण गांधी ने ईश्वर सत्य है, इस सूत्र को उलट दिया। उत्तरकाल में उनका सूत्र बन गया—'सत्य ही ईश्वर है।' ईश्वराभिमुखी कहें या सत्याभिमुखी एक ही बात है।

मार्क्स और केनिज—ये दोनों शुद्ध रूप में अर्थशास्त्री है, दोनों पदार्थाभिमुखी हैं। मार्क्स भी पदार्थाभिमुखी हैं और केनिज भी पदार्थाभिमुखी हैं। इनका मुख पदार्थ की ओर है, अर्थ और संपदा की ओर है।

इस अभिमुखता के द्वारा हम इनके व्यक्तित्व को जान सकते हैं। व्यक्ति से जो सिद्धान्त निकलता है, उसमें उसकी प्रकृति और अभिमुखता प्रमुख कारण बनते हैं। कौन व्यक्ति किस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, यह उसकी प्रकृति, स्वभाव और अभिमुखता पर बहुत निर्भर करता है।

प्रेरणा

• दूसरा पेरामीटर है—प्रेरणा। प्रेरणा क्या रही है? व्यक्ति किसी प्रेरणा से प्रेरित होकर ही काम करता हैं। जैसी प्रेरणा होती है, वैसा ही वह काम करता है।

महावीर की प्रेरणा थी परमार्थ। अर्थ के साथ तीन कोटियां बन जाती हैं—स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ। महावीर की प्रेरणा है परमार्थ, परम अर्थ को प्राप्त करना। परम अर्थ का भारतीय चिंतन में अर्थ रहा—मोक्ष, बंधनमुक्ति। बंधनमुक्त होना परम अर्थ को प्राप्त करना है।

महात्मा गांधी की प्रेरणा भी यही है। गांधी भी अपना अंतिम लक्ष्य मोक्ष मानते हैं।

मार्क्स के पीछे प्रेरणा है करुणा की। मार्क्स एक अर्थशास्त्री होने के साथ-साथ बहुत करुणाशील और संवेदनशील व्यक्तित्व हैं। हिन्दुस्तान में सर्वोदय के विचारकों ने उन्हें ऋषितुल्य माना है। वे गरीबी की पीड़ा और यातना भोग चुके थे। उनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन में करुणा थी और इसी से प्रेरित होकर ही उन्होंने साम्यवादी अर्थशास्त्र का प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा—गरीबी को मिटाया जा सकता है। गरीबी और अमीरी—ये दोनों मनुष्य-कृत हैं, इसलिए मनुष्य इन दोनों को समाप्त कर सकता है। गरीबी मनुष्य-कृत है, इसलिए मनुष्य उसे मिटा सकता हैं। इसी प्रकार अमीरी भी मनुष्य-कृत है।

गरीबी और अमीरी का कारण

इस चिंतन में मार्क्स महावीर के निकट आ जाते हैं। महावीर का भी इस अर्थ में यह सिद्धान्त रहा—अमीरी और गरीबी मनुष्य-कृत हैं या द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव कृत हैं। ये दोनों न कोई ईश्वरीय देन हैं, न कोई कर्म-कृत हैं। बहुत सारे दार्शनिक इन्हें कर्मकृत मानते थे। बहुत सारे जैन लोग भी इन्हें कर्मकृत मान लेते थे किन्तु वास्तव में जो जैनों का कर्मशास्त्र है, उसका अभिमत है—अमीरी और गरीबी, धन मिलना और उसका चले जाना, यह कोई कर्म का परिणाम नहीं हैं। यह कालकृत, परिस्थितिकृत, क्षेत्रकृत या विशेष अवस्थाकृत एक पर्याय है, जिससे आदमी गरीब बन जाता है या अमीर बन जाता हैं। यह कोई शाश्वत तत्व नहीं है कि गरीब गरीब रहेगा और अमीर अमीर रहेगा।

यह मानवीय है, मनुष्यकृत है, इसलिए इसे बदला जा सकता हैं, परिवर्तन किया जा सकता है। इस आधार पर करुणा की प्रेरणा पाकर मार्क्स ने साम्यवादी अर्थ व्यवस्था का प्रतिपादन किया और उसमें बतलाया—मनुष्य आर्थिक स्थिति से आगे जा सकता है। वह भूखा रहे, यह कोई कर्म का विधान नहीं है। कपड़ा न मिले, रोटी न मिले, यह कोई कर्म का फल नहीं है। इसे एक व्यवस्था के द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है।

केनिज के पीछे प्रेरणा है स्वार्थ की। संपन्नता का विकास और सबको संपन्न बना देने की प्रेरणा से वह भावित था। हर आदमी संपन्न बन जाए। इसमें स्वार्थ की प्रेरणा रही। उनका प्रतिपादन रहा—स्वार्थ सबसे बड़ी प्रेरणा है। इसे जितना उभारा जायेगा, उतना ही विकास होगा। केनिज का सारा सिद्धान्त ही स्वार्थ को उभारने का है। लोभ बढ़ाओ, स्पर्धा करो, आर्थिक विकास होगा।

साध्य

तीसरा पेरामीटर है साध्य। साध्य क्या हो? आदमी कोई भी कार्य करता है, उसमें साध्य का निर्धारण पहले करता है फिर साधन का चुनाव करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर का साध्य था—आध्यात्मिक विकास। गांधी का साध्य रहा आध्यात्मिक विकास और साथ-साथ में सर्वोदयी या ग्राम्यव्यवस्था, विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का विकास किन्तु मूलतः साध्य उनका आध्यात्मिक विकास ही था।

मार्क्स का साध्य रहा—आर्थिक-विकास। उनका सारा दर्शन इस पर केन्द्रित है कि अर्थ का विकास कैसे हो? उनके लिए शेष सब गौण हो गया पर सबको सब कुछ मिले, यह उनका प्रयत्न रहा। केनिज का भी लक्ष्य आर्थिक विकास रहा।

इस अर्थ में महावीर और गांधी दोनों एक कोटि में तथा मार्क्स और केनिज दूसरी कोटि में आ जाते हैं।

साधन का चुनाव

चौथा पेरामीटर है साधन का चुनाव। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। साध्य कभी-कभी एक भी हो जाते हैं, किन्तु साधन में बड़ी दूरी आ जाती है। महावीर ने अपने साध्य की संपूर्ति के लिए साधन चुना—अहिंसा, अपरिग्रह और संयम। महात्मा गांधी ने साधन का चुनाव सत्य और अहिंसा के रूप में किया। मार्क्स ने साधन के चुनाव में संदर्भ में अपनी नीति स्पष्ट करते हुए कहा—'हमारा साध्य है आर्थिक विकास, गरीबी को मिटा कर गरीबों की पीड़ा को दूर करना। अहिंसा से इसकी संपूर्ति होती है तो अच्छी बात है, किन्तु नहीं होती है तो हिंसा का आलम्बन लेने में भी हिचकना नहीं है, संकोच नहीं करना है।' उसका स्पष्ट मत था—'बुर्जुवा वर्ग कभी भी अपने अधिकार को छोड़ना नहीं चाहेगा। वर्ग-संघर्ष अनिवार्य है और उसमें हथियारों का उपयोग भी अवश्यंभावी है।'

साधन-शुद्धि की विचारधारा

महावीर और गांधी दोनों साधन-शुद्धि पर बल देते हैं। भारतीय चिंतन में सबसे अधिक बल साधन-शुद्धि दिया है महावीर ने। साधन-शुद्धि नहीं है तो उनके लिए कुछ भी काम्य नहीं है। मनसा, वाचा, कर्मणा, हमारा साधन शुद्ध होना चाहिए। इतिहासकाल में महावीर के पश्चात् आचार्य भिक्षु, जो तेरापंथ के प्रवर्त्तक हैं, ने साधन-शुद्धि के विषय में विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने कहा—जहां साधन-शुद्धि नहीं है, हृदय परिवर्तन नहीं है, वहां अच्छे साध्य को कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता। फिर महात्मा गांधी ने भी साधन-शुद्धि पर व्यापक बल दिया। इन दोनों के विचारों का संबंध जुड़ता है। गुजरात के एक लेखक हैं गोकुलभाई नानजी। उन्होंने अपनी एक पुस्तक में लिखा—'आचार्य भिक्षु के चतुर्थ पट्टधर जयाचार्य के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा साधन-शुद्धि का जो सूत्र था, बीज था, वह श्रीमद् राजचन्द्र के पास पहुंचा और श्रीमद् राजचन्द्र के द्वारा वह सूत्र महात्मा गांधी तक पहुंचा।'

इस प्रकार साधनशुद्धि की एक पूरी श्रृंखला और तादात्म्य की कड़ी प्राप्त होती है। श्रीमद् राजचन्द्र और महात्मा गांधी साधन-शुद्धि पर अटल विश्वास करते थे। किन्तु मार्क्स शुद्ध आर्थिक व्यक्ति थे। जहां शुद्ध आर्थिक चिंतन होता है, वहां साधन-शुद्धि का विचार गौण बन जाता हैं। ऐसा नहीं है कि वे हिंसा के समर्थक या युद्ध के समर्थक थे किन्तु उनके सामने यह प्रश्न नही था कि केवल साधन-शुद्धि पर ही चलना है। गांधी ने कहा—'शुद्ध साधन से स्वतंत्रता मिलती है तो मुझे मान्य है। अगर युद्ध या हिंसा से मिलती है तो आज ही मैं अपने संघर्ष को त्यागने के लिए तैयार हूं। ऐसी स्वतंत्रता मुझे नहीं चाहिए। मैं आजादी चाहता हूं अहिंसा के द्वारा, चाहे वह सौ वर्ष बाद ही मिले।' मार्क्स और केनिज का साधन-शुद्धि पर इतना अटल विश्वास नहीं था। क्योंकि ये दोनों आध्यात्मिक नहीं आर्थिक व्यक्तित्व थे।

केनिज के विचार

मार्क्स ने साधन-शुद्धि के विचार को गौण कर दिया। केनिज ने कहा—'अभी हमें संपन्नता का विकास करना है, इसलिए अभी हमारे लिए अहिंसा, नैतिक मूल्य आदि का विचार करने का अवकाश नहीं है।' उन्होंने कहा—'अर्थशास्त्र ही विज्ञान है।' इस विज्ञान के संदर्भ में नैतिकता अनैतिकता का उनके सामने कोई प्रश्न नहीं था। इन पर विचार करना एथिक्स का काम है, नीतिशास्त्र का काम है। नीतिशास्त्र के विषय को अर्थशास्त्र का विषय नहीं बनाया जाना चाहिए। इसलिए वे नैतिकता, अहिंसा, साधनशुद्धि चरित्र आदि किसी भी विषय को महत्व देने के लिए तैयार नहीं हुए।

प्रयोजन

पांचवा पेरामीटर है प्रयोजन। सामने कोई प्रयोजन होना चाहिए। महावीर ने एक प्रयोजन का प्रतिपादन किया—अव्याबाध सुख—हमें ऐसा काम करना है, जिसके पीछे कोई बाधा न हो, कोई दुःख न हो। एक दुःखानुगत सुख है और एक केवल सुख। एक सुख होता है, जिसके पीछे-पीछे दुःख चलता है जैसे दिन के पीछे रात चलती है। वह दुःखानुगत सुख होता है। वह अव्याबाध सुख नहीं होता, साबाध सुख होता है। महावीर ने कहा, ऐसा सुख पाया जा सकता है, जिसके पीछे कोई बाधा नहीं है, जो शाश्वत है। उस सुख को पाना हमारा प्रयोजन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गांधी का एक स्थूल लक्ष्य था—स्वराज या स्वतंत्रता की प्राप्ति। यह राजनीतिक लक्ष्य था किन्तु मूल लक्ष्य नहीं था। उनका मूल लक्ष्य था—ईश्वरीय साक्षात्कार या सत्य को पाना, सत्य तक पहुंच जाना।

मार्क्स और केनिज का लक्ष्य

मार्क्स और केनिज—इन दोनों का एक लक्ष्य रहा सुख—संतुष्टि। समाज को सुख या सेटिस्फेक्शन मिले। इतना अर्थ हो जाये कि गरीबी मिट जाये, सुख मिले। किन्तु सुख के पीछे जो आ रहा है, उस पर विचार नहीं किया। भूखे को रोटी मिली, सुख मिला, किसी नंगे को कपड़ा मिला, सुख मिला। खुले आसमान के नीचे सोने वाले को छत मिली तो सुख मिला, किसी बीमार को दवा मिली, सुख मिला। जहां आर्थिक प्रयोजन हो, वहां इससे आगे जाया नहीं जा सकता। अगर अध्यात्म का दर्शन उनके सामने होता तो सुख की कल्पना कुछ दूसरी होती। किन्तु आर्थिक जगत् में यही चरम सीमा है। अर्थशास्त्र की सीमा को पार कर वे थोड़ा और गहरे चिंतन में जाते तो शायद उनकी सुख की धारणा भी बदल जाती।

सुविधा और सुख

एक भ्रान्ति पैदा हो गई—सुख और सुविधा को हमने एक मान लिया। इस भ्रान्ति को न मार्क्स तोड़ सके। न केनिज तोड़ सके। अगर उनका चिंतन यह होता—हम अपनी अर्थशास्त्रीय अवधारणाओं और अर्थव्यवस्था के विकास के द्वारा मनुष्य को सुविधा उपलब्ध करा सकते हैं, सुख के लिए उन्हें और आगे खोज करनी है तो आज की स्थिति कुछ दूसरी होती। न इतनी हिंसा होती, न इतने आराध होते, न इतनी मानसिक विक्षिप्तता होती। उन्होंने सुविधा और सुख को एक ही मान लिया। जिसको रोटी नहीं मिलती थी, उसे रोटी मिली तो सुविधा हो गयी, किन्तु उसे सुख भी मिला, यह कहना कठिन है क्योंकि सुख संवेदन के साथ जुड़ा होता है और रोटी भूख के साथ जुड़ी होती है। भूख मिट गयी तो समझें एक व्यथा मिट गयी, किन्तु सुख हुआ, यह तो नहीं कहा जा सकता। एक करोड़पति या अरबपति आदमी रोटी खा रहा है और साथ में दुःख भी भोग रहा है। दुःख भी खा रहा है वह रोटी के साथ। रोटी खाते समय फोन आ गया। अमुख स्थान पर इतना घाटा हो रहा है, दुर्घटना में इतना नुकसान हो गया है, बस यह सुनते ही वह दुःखी बन जायेगा। रोटी सुख का साधन होती तो वह दुःखी नहीं बनता। हम यह मान कर चलें—रोटी भूख शान्त करने का साधन है, सुख का साधन नहीं। मार्क्स और केनिज अगर इस चिंतन में स्पष्ट होते तो सचमुच आज स्थिति भिन्न होती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बहुत संपन्न व्यक्ति होटल में बैठा था। लड़का दौड़ता हुआ आया। उसने कहा—'पिताजी! अपनी सबसे बड़ी बिल्डिंग में आग लग गयी, मकान जल कर राख हो गया।' यह सुन कर वह दुःख में डूब गया। इतने में ही दूसरा लड़का आया और बोला—'मकान जल गया, किन्तु संतोष की बात यह है कि उस मकान को पहले ही बेच दिया था। उसकी पूरी कीमत हमें प्राप्त हो गयी थी।' तत्काल ही उसका सारा दुःख काफूर हो गया।

सुख-दुःख किसके साथ जुड़े हैं? संवेदन के साथ जुड़े हैं। मकान जल रहा है या बच रहा है, इसके कोई मायने नहीं हैं। पदार्थ गौण है, मुख्य है हमारा संवेदन। महावीर ने सुख और सुविधा—दोनों को अलग बताया। सुख अलग है, सुविधा अलग है। उन्होंने कहा—जिसे सुख मानते हो, वह भी क्षणिक है। क्षणमात्र सुख मिला, किन्तु परिणाम-काल में वह लम्बा दुःख हो सकता है।

स्वतंत्रता का प्रश्न

हम एक बात पर और विचार करें। स्वतंत्रता और सुख—ये दोनों चिरकालीन अभिप्रेत रहे हैं। मनुष्य चाहता रहा है—स्वतंत्र रहूं और सुखी रहूं। जहां महावीर और गांधी का प्रश्न है, वहां नितान्त स्वतंत्रता का प्रश्न है। व्यक्ति-स्वतंत्रता सर्वप्रथम मान्य है। जहां व्यक्ति की स्वतंत्रता बाधित हो, वह स्थिति न महावीर को मान्य है, न गांधी को। मार्क्स ने भी इस अर्थ में कम दौड़ नहीं लगाई। उन्होंने भी एक सपना देखा और वह बहुत महत्वपूर्ण है। 'स्टेटलेस सोसायटी' राज्यविहीन समाज—यह कितना बड़ा स्वप्न है। ऐसी स्वतंत्रता, जहां कोई शासन ही नहीं है।

केनिज ऐसा सपना नहीं देख सके। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में स्वतंत्रता तो मान्य है किन्तु वे स्टेटमेल सोसायटी की कल्पना और उसका प्रतिपादन नहीं कर सके। मार्क्स ने ऐसा किया किन्तु जहां केन्द्रित अर्थव्यवस्था होती है, वहां राज्यविहीन शासन का सपना कैसे लिया जा सकता है? वहां तो हिंसा और दण्ड का सहारा लेना ही होगा। वहां तानाशाही पनप सकती है, स्वतंत्रता की बात नहीं हो सकती।

लेनिन ने मार्क्स के सपने को साकार करने का प्रयत्न किया किन्तु स्टालिन के हाथ में जैसे ही सत्ता आयी, तानाशाही का रूप इतना विकराल हो गया, स्वतंत्रता के लिए अवकाश ही नहीं रहा। सारी स्थिति बदल गयी, मार्क्स का वह सपना अधूरा ही रह गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदार्थ और स्वतंत्रता

स्वतंत्रता पदार्थ के साथ नहीं जुड़ सकती। जहां-जहां पदार्थ का विकास होता है, वहां वहां आदमी परतंत्र बन जाता है। पहले पदार्थ किसी व्यक्ति का गुलाम बनता है, फिर व्यक्ति पदार्थ का गुलाम बन जाता है। जैसे कहा जाता है—पहले आदमी शराब पीता है, फिर शराब आदमी को पीने लग जाती है। ठीक वैसे ही यह कहा जा सकता है—पहले आदमी पदार्थ को अपने अधीन बनाने का प्रयत्न करता है, फिर पदार्थ उसको अपने अधीन बना लेता है। इतना अधीन बना लेता है कि व्यक्ति मरते दम तक पदार्थ को छोड़ नहीं सकता।

एक व्यक्ति मृत्युशय्या पर था, अंतिम सांसें गिन रहा था। सारी प्राणशक्ति को जुटा कर बड़े लड़के को पुकारा। बड़ा लड़का बोला—पिताजी! मैं यहीं बैठा हूं। फिर क्रमशः दूसरे, तीसरे और चौथे का नाम पुकारा। सबने कहा—पिताजी! हम यहीं है। उसने झल्लाकर कहा—मूर्खों! सबके सब यहीं हो तो दुकान पर कौन है?'

स्वतंत्रता की भाषा

पहले पदार्थ सामने रहता है फिर पदार्थ के अधीन बन जाता है, तो स्वतंत्रता अपने आप छिन जाती है। महावीर ने स्वतंत्रता की जो परिभाषा दी, वह यह है—जितना ज्यादा इच्छा-परिमाण का विकास होगा, उतने ही तुम स्वतंत्र रह सकोगे। गांधी की भाषा भी लगभग यही है। किन्तु मार्क्स की भाषा में एक ओर है शासनविहीन समाज, दूसरी ओर है पदार्थ का प्रचुरतम विकास। इन दोनों में परस्पर इतना विरोध है कि दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। केनिज का अर्थार्जन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सिद्धान्त भी स्थायी नहीं हो सकता। स्वतंत्रता के साथ परोक्ष रूप से परतंत्रता के न जाने कितने बंधन आते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था में प्रत्यक्षतः अर्थार्जन में कोई प्रतिबंध नहीं है किन्तु प्रकारान्तर से कितने प्रतिबंध लग जाते हैं, यह अपहरण और चोरी करने वाले जानते हैं। आज तो इसके इतने तरीके विकसित हो गए हैं कि एक व्यक्ति के द्वारा अर्जित धन में हिस्सेदारी कैसे बंटाई जाए? इस भाषा में सोचा जाता है—यह संविभाग करना नहीं जानता है तो हम संविभाग करना जानते हैं। इस अर्थ में सोचें तो परतंत्रता की बात बहुत सापेक्ष बन जाती है, स्वतंत्रता का बिन्दु बहुत चिन्तीय बन जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नए आयाम खुले

इन सारे मापदंडों से हम महावीर, गांधी, मार्क्स और केनिज की चिंतनधारा को, इनकी प्रकृति को समझने का थोड़ा सा प्रयत्न करें तो उनके द्वारा दी हुई व्यवस्था को हम समझ सकेंगे। महावीर प्रत्यक्षत: कोई अर्थशास्त्री नहीं थे। वे तो अपरिग्रही थे किन्तु उनके अपरिग्रह में से अर्थशास्त्र के तमाम सूत्र फलित होते हैं। गांधी भी प्रत्यक्षत: एक साधक थे। उन्होंने राजनीति का माध्यम लिया इसलिए अर्थव्यवस्था का भी कुछ प्रतिपादन किया। मार्क्स और केनिज—ये दोनों विशुद्ध अर्थशास्त्रीय व्यक्तित्व थे, इसलिए अर्थशास्त्र को समझने के लिए इन दोनों को समझना होगा किन्तु केवल अर्थशास्त्र को समझ कर हम समाज को अच्छा नहीं बना सकते। कोरा अर्थ बढ़ा कर समाज को स्वस्थ और संतुलित नहीं रख सकते। महावीर और गांधी को समझे बिना मार्क्स और केनिज को समझा गया तो समाज की व्यवस्था अच्छी नहीं रहेगी। इन चारों का तुलनात्मक अध्ययन अर्थशास्त्रीय दृष्टि से बहुत आवश्यक है। यह तुलनात्मक अध्ययन हमारे सामने कुछ नए आयाम खोल सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नई अर्थनीति के पेरामीटर

अर्थशास्त्र के संदर्भ में हमने महावीर, गांधी, मार्क्स और केनिज का एक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। कौन-सा विचार सत्य है और कौन-सा मिथ्या—यह प्रश्न हमारे सामने नहीं है। एकान्तवादियों के सामने यह प्रश्न हो सकता है कि अमुक प्रणाली सत्य है और अमुक प्रणाली मिथ्या है, किन्तु अनेकान्त में सत्यांशों का समाहार और समन्वय होता है। अनेकान्त के अनुसार कोई भी विचार ऐसा नहीं है, जिसमें सत्यांश न हो और कोई भी विचार ऐसा नहीं है जो पूर्ण सत्य हो। जो भी विचार है, वह सत्य का एक अंश है और जो भी हमारी अभिव्यक्ति है, वह सत्यांश की एक अभिव्यक्ति है। समग्र सत्य को कहने के लिए न तो हमारे पास कोई शब्द है और न सोचने के लिए कोई मस्तिष्क। इसलिए सत्यांशों का ग्रहण, स्वीकृति और अभिव्यक्ति—यह सत्य की दिशा में प्रस्थान का राजमार्ग बनता है।

यह मांग क्यों ?

आज नये विश्व की व्यवस्था की मांग है, नयी समाज व्यवस्था और नयी अर्थ व्यवस्था की मांग है। यह मांग क्यों है ? इसलिए है कि हमने सत्यांश को सर्वांशत: समग्रता से सत्य मान कर व्यवहार शुरू कर दिया। आज की जो अर्थनीति है, वह मुख्यत: माइक्रो इकोनोमिक्स और मेक्रो इकोनोमिक्स—इन दो के आधार पर चल रही है। माइक्रो इकोनोमिक्स की व्यवस्था चल रही थी किन्तु केनिज ने जब से मेक्रो इकोनोमिक्स का प्रतिपादन किया, आर्थिक क्रान्ति का स्वर प्रखर हुआ, अनेक राष्ट्र उससे प्रभावित हुए। मेक्रो इकोनोमिक्स का मूल है—विशाल पैमाने पर उद्योग लगाओ, उत्पादन करो। यह सब बड़े पैमाने पर करो, जिससे आज की बढ़ती हुई आबादी की भूख को मिटाया जा सके। कोई भी नहीं कहेगा कि यह उद्देश्य गलत है। यही उद्देश्य सामने रखा—भूखी और पीड़ित जनता की पीड़ा को दूर किया जा सके, उसको रोटी, कपड़ा, मकान मिल सके, उसकी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। उद्योगों का जाल बिछाए बिना ऐसा करना संभव नहीं है।

स्तर इन्द्रिय-चेतना का

वर्तमान में इन दो अर्थनीतियों के प्रति बहुत आकर्षण है। न गांधी की अर्थनीति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के प्रति इतना आकर्षण है और न दूसरी किसी अर्थनीति के प्रति इतना आकर्षण है। आज आकर्षण है केवल इन दो प्रणालियों के प्रति और उसमें भी उस राष्ट्रीय नीति के प्रति, जो मेक्रो, अर्थनीति के आधार पर चल रही है। राष्ट्र अपने संसाधनों को इतना बढ़ाए, जिससे सब सम्पन्न बन जाएं और संसाधनों का प्रचुरतम उपयोग किया जा सके। इसके प्रति आकर्षण है। वर्तमान समाज की चेतना इन्द्रिय स्तर की चेतना है। इन्द्रिय स्तर की चेतना का आर्थिक प्रचुरता में आकर्षण होना स्वाभाविक है। इसलिए इन प्रणालियों ने जनता को, राष्ट्रों को बहुत आकर्षित किया है।

त्रुटि है अर्थ-व्यवस्था में

प्रश्न है फिर नई अर्थव्यवस्था की मांग क्यों? हर मांग के पीछे कोई कारण होता है। निष्प्रयोजन कोई मांग पैदा नहीं होती। इस प्रश्न का उत्तर सीधा है। हिंसा बहुत बढ़ी है। तनाव बढ़ा है, मानसिक अशांति बढ़ी है और विश्व शान्ति के लिए भी खतरा बढ़ा है। आदमी खतरे में ही जी रहा है। वैयक्तिक और पारिवारिक जीवन में समस्याएं बढ़ी हैं। हत्या, आत्महत्या, तलाक आदि-आदि अब आम बात हो गए हैं। ऐसी स्थिति में आदमी को सोचने के लिए विवश होना पड़ रहा है—कहीं न कहीं हमारी आर्थिक नीति में, अर्थव्यवस्था में कोई त्रुटि अवश्य है, जिससे यह पौध विकसित हो रही है। मुड़ कर देखने का एक अवसर मिला है। स्वर उठ रहा है—अब एक अर्थव्यवस्था लागू होनी चाहिए। अब मेक्रो से भी काम नहीं चलेगा, एक ग्लोबल इकोनामी या जागतिक अर्थव्यवस्था होनी चाहिए। वैश्विक अर्थनीति होनी चाहिए। अगर पर्यावरण की समस्या सामने नहीं आती तो ग्लोबल इकोनामी की बात भी नहीं उभरती। विकसित राष्ट्रों ने संसाधनों पर बहुत कब्जा किया। बड़े-बड़े उद्योग स्थापित किये और इतना प्रदूषण पैदा किया कि पर्यावरण के लिए खतरा पैदा हो गया। जंगलों की कटाई और धरती का अतिशय दोहन हुआ, प्रकृति का सारा संतुलन ही गड़बड़ा गया। इस बात पर अब ध्यान गया है कि शक्तिशाली राष्ट्र दूसरों के लिए कल्याणकारी कम बन रहे हैं, खतरा ज्यादा बन रहे हैं। वे शोषण करने में लगे हुए हैं। सहायता कम करते हैं, शोषण अधिक करते हैं। आर्थिक साम्राज्य खड़ा करने और उसे मजबूत बनाने की होड़ लगी हुई है।

गुलामी की स्थिति

पुराने जमाने में युद्ध के द्वारा सत्ता का विस्तार होता था और साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का पोषण होता था। अब वह बात नहीं रही। आज प्रभुसत्ता उसकी है, जिसका बाजार पर अधिकार है। विकसित राष्ट्रों में यह होड़ लगी हुई है कि कौन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारी दुनिया पर अपना एकाधिकार जमा पाता है। विकसित राष्ट्रों की इस अंधाधुंध दौड़ से छोटे और अविकसित राष्ट्र भयभीत हैं। उनका शोषण भी हो रहा है और उनके अधिकारों का सीमाकरण भी हो रहा है। विकसित राष्ट्रों का अधिकार व्यापक बन रहा है और छोटे राष्ट्रों का अधिकार सीमित हो रहा है। वे एक प्रकार से निरन्तर उनके कब्जे में आते जा रहे हैं। स्वतन्त्रता का भौगोलिक और राजनीतिक अपहरण हुए बिना ही वे गुलाम बनते जा रहे हैं।

स्वाभाविक सोच

इस सारी समस्या के सन्दर्भ में यह सोच स्वाभाविक थी कि कोई जागतिक अर्थव्यवस्था होनी चाहिए, जिससे शक्तिशाली राष्ट्र छोटे राष्ट्रों का शोषण न कर सकें, उनकी स्वतन्त्रता को छीन न सकें, उन पर अपना प्रभुत्व स्थापित न कर सकें और पर्यावरण को प्रदूषित भी न करें। इस समस्या ने एक नया प्रश्न उपस्थित कर दिया। आज का आदमी सोचने के लिए विवश है। पश्चिम के अनेक विचारक इस बारे में बहुत चिंतन कर रहे हैं।' 'टु हैव ओर टु बी' के लेखक ने इस बारे में बहुत चिंतन किया। 'थर्ड वेव, द न्यू वर्ल्ड आर्डर', 'अर्थ इन बेलेंस' आदि आदि के लेखक इस बात से चिन्तित है कि अगर जागतिक अर्थनीति का विकास नहीं किया गया तो भविष्य की भयावह स्थिति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। साम्यवादी अर्थव्यवस्था लड़खड़ा गयी, पूंजीवादी, अर्थव्यवस्था लड़खड़ाने की स्थिति में है। केनिज ने जो बात कही, वह अच्छी लगी किन्तु उसमें इस तथ्य पर विचार नहीं किया गया—संसाधन तो सीमित हैं, उनका असीम उपयोग कैसे होगा? यदि संसाधन असीम होते, रा-मैटेरियल असीम होते तो शायद उद्योग बड़े पैमाने पर चल सकते थे। संसाधनों की सीमा है, इसलिए यह संभव नहीं है। यही कारण है कि पूंजीवाद भी अब लड़खड़ा रहा है और नयी अर्थव्यवस्था की अपेक्षा सामने आ रही है। समस्या यह है—आज हम केवल ग्राम व्यवस्था, ग्रामोद्योग जैसी प्रणालियों पर चलें, ऐसा संभव नहीं लगता। केनिज ने ठीक ही कहा था—'अब इतना आगे बढ़ गए हैं कि पीछे लौटना संभव नहीं है' और जिस प्रकार आबादी बढ़ रही है, उसमें तो बिल्कुल ही संभव नहीं लगता। आज तो अनेकान्त की दृष्टि से कुछ सत्यांश मिल जाएं, इस दिशा में सोचें और यह देखें—उनका समन्वय कैसे हो? हम कैसे एक मंच पर महावीर, गांधी, मार्क्स और केनिज को ला सकें? इस दिशा में नया सोच और नया चिंतन आवश्यक लगता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केन्द्रीकरण : विकेन्द्रीकरण

केन्द्रीकरण आज की अर्थनीति का मुख्य आधार है। यदि हम महावीर और गांधी को उस मंच पर लाएं तो एक समन्वय करना होगा कि केन्द्रीकरण के साथ विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था भी चले।

केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण—दोनों का योग होगा तभी बात बनेगी। कोरे केन्द्रीकरण ने बेरोजगारी को बहुत बढ़ावा दिया है, समस्याएं पैदा की हैं। केन्द्रीकरण के साथ विकेन्द्रीकरण भी होना चाहिए। यदि ऐसा होता है तो उसमें महावीर भी खड़े हैं, गांधी भी खड़े हैं। केन्द्रीकरण को भी सर्वथा मिटाया नहीं जा सकता। उसका भी एक संतुलित उपयोग आवश्यक है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका

आज संसाधनों पर नियंत्रण अपने-अपने राष्ट्र का है। अगर पैट्रोल अरब देशों के पास है तो उस पर उनका नियंत्रण है। अगर बहुत सारे खनिज अमेरिका में हैं, तो उन पर उसका नियंत्रण है। संयुक्त राष्ट्र संघ की अब तक जो भूमिका रही है, वह केवल एक शांति और सामंजस्य बिठाने की भूमिका रही है। अगर संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्था को जागतिक अर्थनीति की भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया जाये और वह इस स्थिति में आए कि अर्थनीति का निर्धारण कर सके और संसाधनों पर नियंत्रण कर सके तो वर्तमान की समस्या का कोई समाधान मिल सकता है।

वैश्विक अर्थनीति को सूत्र

एरिकफ्रोम ने वर्तमान की व्यवस्था को ठीक करने के लिए, उसमें परिवर्तन लाने के लिए कुछ सूत्र सुझाए हैं, जो वैश्विक अर्थनीति के लिए बड़े उपयोगी बन सकते हैं। उनका एक सूत्र है—क्रोध, लोभ, घृणा और मोह को कम किया जाये। यह बात आध्यात्मिक और उपदेशात्मक बात जैसी लगती है किन्तु इतनी छोटी बात नहीं है। इसमें एक बहुत बड़े सत्य का उद्घाटन है। संतुलित अर्थव्यवस्था इन आवेगों को संतुलित किये बिना कभी संभव नहीं बनेगी। लोभ का संवेग या इमोशन प्रबल है, तो कोई भी अर्थव्यवस्था संतुलित बन नहीं सकती, चाहे कितनी ही नीतियां क्यों न निर्धारित कर ली जाएं। घृणा, हीन-भावना आदि का संवेग प्रखर है तो कोई भी अर्थनीति कारगर नहीं हो सकती।

संवेग की समस्या

भगवान् महावीर ने जिन सत्यों का प्रतिपादन किया, उनमें से एक सत्य यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है—जिस समय मनुष्य जाति में क्रोध, अहंकार, माया, छलना और लोभ—ये शान्त होते हैं, समाज व्यवस्था अच्छी चलती है, अर्थव्यवस्था और राज्य-व्यवस्था अच्छी चलती है। जब ये संवेग प्रबल बन जाते हैं तब सारी व्यवस्थाएं विश्रृंखलित हो जाती हैं। एक व्यक्ति, जिसके हाथ में सत्ता है, का संवेग प्रबल बन जाए तो हर कोई हिटलर बन सकता है, स्टालिन बन सकता है और अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए भयंकर से भयंकर संहारक शस्त्रों का प्रयोग कर सकता है। इसलिए यदि हम संतुलित अर्थ-व्यवस्था और जागतिक अर्थ-व्यवस्था की बात करते हैं तो हमें दोनों आयामों पर चलना होगा— बाहर से व्यवस्था का सीमाकरण और भीतर से संवेगों का समीकरण या संतुलन। हम केवल बाह्य व्यवस्था को ठीक करना चाहें और भीतर के संवेग हमारे प्रबल रहें तो यह कभी संभव नहीं है। आज एक व्यवस्था बनेगी, पांच-दस वर्ष बाद अगर कोई शक्तिशाली व्यक्ति आयेगा तो उसे ध्वस्त कर देगा।

मार्क्स और केनिज ने जिस अर्थव्यवस्था के परिवर्तन पर ध्यान दिया, वह केवल संसाधन, उत्पादन और विनियम की व्यवस्था थी। व्यक्ति को बदलने की व्यवस्था पर ध्यान नहीं दिया, इसीलिए मार्क्स की व्यवस्था का परिणाम यह आया—अधिनायकवादी व्यवस्था ने सारी व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया। केनिज की व्यवस्था का परिणाम यह आ रहा है—उत्पादन शांति के लिए, भूख मिटाने के लिए कम हो रहा है, संहार के लिए अधिक हो रहा है। यदि संहार में इतनी शक्ति नहीं लगती तो आज गरीबी और बेरोजगारी की समस्या जटिल नहीं रहती। किन्तु यह कैसे संभव है? जब मनुष्य के भीतर भय और लोभ का संवेग है, प्रभुत्व के विस्तार और घृणा का संवेग है, अपने को ऊंचा और दूसरों को हीन मानने का संवेग है, तब वह भूख मिटाने की चिन्ता क्यों करेगा? उसकी चिन्ता होगी शक्ति के निर्माण की। जहां शक्ति का निर्माण होगा, वहां शस्त्र-निर्माण एक अनिवार्य शर्त है।

भयंकर भूल

यदि हम नयी अर्थ-व्यवस्था के बारे में सोचें तो इस भूल का परिष्कार करें, जो अतीत में हमसे होती रही है और वह है पदार्थ-व्यवस्था और बाह्य व्यवस्था पर सारा ध्यान केन्द्रित करना। आन्तरिक व्यवस्था पर हमारा कभी ध्यान ही नहीं गया। जब तक मनुष्य भीतर से नहीं बदलेगा, केवल व्यवस्था के बदलाव से क्या होगा? व्यक्ति कितनी ही अच्छी मोटर या कार बना ले। ड्राइवर कुशल नहीं है तो वह विश्वसनीय नहीं होगी, उससे खतरा बना रहेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम जिस दुनिया में जी रहे हैं, वहां हमारी सारी प्रवृत्ति, सारा व्यवहार द्वन्द्व से शुरू होता है। जहां द्वन्द्वात्मक स्थिति है, वहां कोई अकेला काम नहीं कर सकता। न अकेला भीतर का काम कर सकता है, न अकेला बाहर का काम कर सकता है। भीतर की स्थिति बदले और बाहर की स्थिति भी बदले। वर्तमान की अर्थव्यवस्था को बदलने और नयी अर्थ व्यवस्था के निर्माण की हमारी कोई मनोवृत्ति है तो इस भूल का परिष्कार करना होगा। मेरी दृष्टि में यह भयंकर भूल है और इसका परिष्कार किये बिना कुछ भी नहीं होगा।

कुछ मानदण्ड

नयी अर्थ-व्यवस्था के प्रवर्तन के लिए हमें कुछ पेरामीटर भी सामने रखने होंगे। नई अर्थव्यवस्था वह हो, जो

- विश्व शान्ति के लिए खतरा न बने
- अपराध में कमी लाएं।
- हिंसा को प्रोत्साहन न दे।
- पदार्थ में अत्राण की अनुभूति जगाए।

विश्व शान्ति के लिए खतरा न बने

प्रथम शर्त है कि ऐसी अर्थव्यवस्था हो, जो विश्व शान्ति के लिए खतरा न बने। अकेला जो भी बढ़ना चाहे, वह व्यक्ति हो, समाज या राष्ट्र, खतरा पैदा करेगा। इस संदर्भ में महावीर का महत्वपूर्ण सूत्र है—

जे लोयं अब्भाइक्खई से अत्ताणं अब्भाइक्खई।
जे अत्ताणं अब्भाइक्खई से लोयं अब्भाइक्खई।

'जो लोक का, जगत् का अस्वीकार करता है, वह अपने अस्तित्व अस्वीकार करता है और जो अपने अस्तित्व को अस्वीकार करता है, वह जगत् के अस्तित्व को अस्वीकार करता है।' महावीर ने कहा—'जगत् के अस्तित्व को अस्वीकार मत करो और अपने अस्तित्व को भी अस्वीकार मत करो।' पर्यावरण का यह सबसे बड़ा सूत्र है—'तुम अकेले नहीं हो। तुम अपने अकेले के लिए कुछ करो तो सोचो कि मेरे इस कार्य का, मेरे इस व्यवहार का पूरे विश्व पर क्या प्रभाव पड़ेगा? प्रश्न हो सकता है—एक छोटा आदमी क्या सोचे? उसके किसी किये का दुनिया पर क्या प्रभाव पड़ेगा? किन्तु यह हमारी भूल है।'

महावीर ने अनेकान्त की दृष्टि से कहा—एक अंगुली हिलती है तो उससे सारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्व प्रकंपित होता है, अंगुली के परमाणुओं से जुड़े हुए समस्त परमाणु प्रभावित होते हैं। पूरी श्रृंखला जुड़ी है। जैन आचार्यों ने बतलाया कि कपड़े का एक तार अलग करो, उसमें निःसृत एक परमाणु समुद्र में जाकर सारे समुद्र को प्रकंपित करेगा, तालाब में जाकर सारे तालाब को प्रकंपित करेगा। हम अकेले नही हैं, सारे संसार से जुड़े हुए हैं। इसीलिए अनेकान्त का सूत्र बना—न एकान्ततः भिन्न और न एकान्ततः अभिन्न, किन्तु भिन्नाभिन्न। एक व्यक्ति इस लोक से सर्वस्था भिन्न नही है और सर्वथा अभिन्न भी नहीं है। पूरे विश्व के साथ हमारा अस्तित्व जुड़ा हुआ है, इसलिए एक व्यक्ति सर्वथा भिन्न नहीं है और उसका स्वतन्त्र अस्तित्व है, इसलिए सर्वथा अभिन्न नहीं है। वह भिन्न भी है और अभिन्न भी है। जब वह अभिन्न है तब उसका प्रभाव पूरे विश्व पर कैसे नहीं होगा? इसीलिए कहा गया—जो लोक का अभ्याख्यान करता है, वह अपना अभ्याख्यान करता है और जो अपना अभ्याख्यान करता है, वह पूरे लोक का अभ्याख्यान करता है।

व्यक्ति और विश्व

हम व्यक्ति और लोक—दोनों के संदर्भ में चिन्तन करें। हमारा कोई भी चिंतन विश्व को छोड़कर केवल व्यक्ति के संदर्भ में न हो और व्यक्ति को छोड़कर केवल विश्व के संदर्भ में न हो। व्यक्ति और विश्व—दोनों के संदर्भ में हमारा चिन्तन, विचार और नीति का निर्धारण हो। ग्लोबल इकोनामी की नीति का निर्धारण करें तो हमें सबसे पहले इस बात का ध्यान रखना होगा—यह अर्थनीति विश्व शान्ति के लिए खतरा न बने, व्यक्ति की शांति के लिए खतरा न बने। जो व्यक्ति की शांति को खतरा बनेगी, उसे खण्डित करेगी, वह विश्व शान्ति को खंडित करेगी। जो विश्व की शान्ति को खंडित करेगी, वह व्यक्ति की शान्ति को खंडित करेगी। व्यक्ति और विश्व—दोनों की शांति के लिए खतरा न बने, यह नई अर्थनीति का पहला पेरामीटर है।

हिंसा को प्रोत्साहन न मिले

दूसरा पेरामीटर—अर्थनीति हिंसा और हत्या को प्रोत्साहन न दे। हिंसा जीवन के साथ जुड़ी हुई है। प्राचीन आचार्यों ने कहा—'**जीवो जीवस्य जीवनम्**' जीव जीव का जीवन है। यह भी सत्यांश है। इसको भी समग्रता से घटित करेंगे तो सही नहीं होगा। किन्तु इसमें कोई मतभेद नही है कि जीवन-निर्वाह के लिए हिंसा अनिवार्य है। हिंसा को सर्वथा तो नही छोड़ सकते इसीलिए महावीर ने एक विशेषण जोड़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया—अनावश्यक हिंसा न हो, आक्रामक हिंसा न हो। वह अर्थनीति बने, जो अनावश्यक और आक्रामक हिंसा को प्रोत्साहनन दे। मनुष्य की ही नहीं, जल की भी अनावश्यक हिंसा न हो, उसका भी अपव्यय न हो, वनस्पति जगत् की भी अनावश्यक हिंसा न हो। छोटे से छोटे प्राणी की भी अनावश्यक हिंसा न हो। यह बहुत अपेक्षित है।

आज विचार के क्षेत्र में एक भ्रान्ति काम कर रही है। महाभारत में वेदव्यास ने लिखा है— **'न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्।'** मनुष्य से श्रेष्ठ कोई नहीं है। महावीर ने भी कहा—**'माणुसस्स हे विग्गहे खुल दुल्लहे।'** किन्तु जहां यह कहना ठीक है—मनुष्य से श्रेष्ठ कोई नहीं है, वहां यह भी कह सकते हैं—मनुष्य से गलत भी कोई नहीं है। दोनों को मिलाएं तो समग्र सत्य बनेगा। मनुष्य से श्रेष्ठ और कोई नहीं है, यह कहने का अर्थ था—विकास की दृष्टि से मनुष्य से श्रेष्ठ कोई नहीं है। हमने प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में इसकी व्याख्या इस प्रकार की—'मनुष्य का नाड़ीतंत्र, ग्रंथितन्त्र इतना विकसित है, उसका रीजनिंग माइंड इतना सक्रिय है, उसकी विवेक चेतना इतनी जागृत है कि उससे श्रेष्ठ और कोई प्राणी नहीं है। यह एक सत्यांश है। इस आधार पर ही मान लिया गया कि मनुष्य के लिए सब कुछ खाद्य है। वह किसी पशु को मारे या पक्षी को। मांस भक्षण हेतु आज करोड़ों पशु-पक्षियों की वह निर्मम हत्या कर रहा है। क्या फिर भी वह श्रेष्ठ प्राणी है? श्रेष्ठता का यह जो दुरुपयोग हुआ है और इस धारणा ने मनुष्य को जितना भटकाया है, जितना निरंकुश बनाया है, शायद उतना वह कभी नहीं रहा। ऐसा लगता है कि वे मूक पशुओं की हत्याएं उससे इसका प्रतिशोध भी ले रही हैं। शारीरिक और मानसिक दृष्टि से मनुष्य निरन्तर अस्वस्थ होता चला जा रहा है। बहुत कुछ साधनों को पाकर भी निराश्रय और शरणविहीन होता चला जा रहा है, हीन-दीन बनता चला जा रहा है।

शरण नहीं है पदार्थ

एरिकफ्रोम ने एक सूत्र सुझाया, जिसे मैं महावीर के सूत्र का अनुवाद मानता हूं और वह यह है—नयी अर्थनीति में यह भावना जागृत करनी चाहिए—पदार्थ हमारे लिए त्राण नहीं है। एक अनुप्रेक्षा है अशरण अनुप्रेक्षा। कोई भी पदार्थ हमारे लिए शरण नहीं है। व्यवहार में तो वह शरण बनता है, किन्तु मूलतः कोई भी पदार्थ अंतिम शरण नहीं है। ठीक इसी भाषा में एरिकफ्रोम ने कहा—पदार्थ कोई त्राण नहीं है, इस भावना का विकास करना चाहिए। अब अनित्य अशरण आदि-आदि अनुप्रेक्षाओं का विकास होगा तब हमारा आन्तरिक परिवर्तन होगा, संवेगों पर नियंत्रण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने की हमारी क्षमता बढ़ेगी। इससे अनुस्यूत जागतिक अर्थनीति का निर्धारण होगा तो राष्ट्रीय अहं और प्रभुसत्ता का अहं कम होगा, उसका संतुलन बनेगा।

अपराध में कमी लाए

नई अर्थनीति का एक पेरामीटर यह होना चाहिए—अर्थ-व्यवस्था अपराध में कमी लाए। यह नहीं माना जा सकता—आज तो अपराध बढ़ रहे हैं, वे अहेतुक हैं। आज की आर्थिक अवधारणा ने व्यक्ति में इतनी लालसा पैदा कर दी कि इतना विकास होना चाहिए। एक आधुनिक व्यक्ति अपने जीवन का एक स्टैण्डर्ड बनाता है, आधुनिक कहलाता है। इस 'स्टैण्डर्ड आफ लिविंग' के साधन जिन्हें सुलभ हैं वे बड़े अपराधों में जाते हैं, छोटे में नहीं। वे शोषण और व्यावसायिक अपराध करते हैं या राजनीतिक अपराध करते हैं किन्तु जो गरीब आदमी हैं, जिन्हें जीवन के साधन उपलब्ध नहीं है, वे छोटे अपराध में जाते हैं।

दो विद्यार्थी साथ में पढ़े। एक के घर में सारे आधुनिक साधन हैं—रेडियो, टी० वी० फ्रिज आदि। दूसरे विद्यार्थी को साइकिल जैसा मामूली साधन भी उपलब्ध नहीं है। साधनहीन विद्यार्थी के मन में सम्पन्न को देखकर यह भावना जागती है—हम गरीब हैं। फिर उसके मन में येन-केन प्रकारेण उन साधनों को प्राप्त करने की भावना जागती है। यह एक मनोवृत्ति इसलिए पनपी है कि साधन शुद्धि और नैतिक मूल्यों पर अर्थनीति में कोई विचार नहीं हुआ। यह व्यवस्था का दोष है। अपराध बढ़ा है, इसमें व्यक्ति का कोई दोष नहीं है। अगर केवल मध्यम वर्ग होता तो शायद इतने अपराध नहीं होते।

आज ये तीन वर्ग हुए हैं—उच्च, मध्यम और निम्न। इससे अपराध और हिंसा को प्रोत्साहन मिला है। गरीबी की रेखा के नीचे जीवन जीने वाले वर्ग के मन में आकांक्षा जाग गयी, किन्तु प्राप्ति के साधनों से वह वंचित रहा। ऐसी स्थिति में नैतिकता, प्रामाणिकता, अध्यात्म—ये सब उसके लिए बेकार की बातें साबित होती हैं, इन्हें वह मात्र ढकोसला मानने लगता है। इन्हें वह बुर्जुआ वर्ग द्वारा अपने स्वार्थ के लिए बनाई गई ढाल मानता है। सबको अस्वीकार करके वह अपराध की दुनिया में प्रवेश कर लेता है। यह अर्थव्यवस्था के साथ पनपने वाली मनोवृत्ति है। यदि हमने व्यवस्था के साथ समाज की मनोवृत्ति पर ध्यान नहीं दिया तो पूरा आर्थिक विकास हो जाने पर भी समाधान नहीं होगा।

दोनों स्वर सुनाई दें

अर्थव्यवस्था ऐसी हो, जिसमें एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का शोषण न कर सके और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी पर अपनी व्यावसायिक या वैचारिक प्रभुसत्ता स्थापित न कर सके। अगर इस प्रकार की अर्थव्यवस्था बनती है तो आज की मांग को कुछ समाधान मिलेगा। यह नहीं कहा जा सकता कि कोई व्यवस्था शाश्वत बन जायेगी। शाश्वत तो कुछ है ही नहीं किन्तु जो मनुष्यकृत है, उसे अवश्य समाधान मिल सकता है यदि हम इन व्यवस्थाओं को समन्वित कर सके महावीर, गांधी, मार्क्स और केनिज को मिला सकें। जहां केनिज कहते हैं—खूब विकास करो, खूब उत्पादन करो, संसाधनों का विकास करो वहां महावीर का यह स्वर भी सुनाई दे—**'कयाणं अहं अप्प वा बहुं वा परिग्गहं परिच्चइस्सामि'** वह दिन धन्य होगा, जब मैं अल्प बहु परिग्रह का परित्याग करूंगा। एक ओर परिग्रह के परित्याग की भावना, विसर्जन की भावना है, दूसरी ओर अर्जन की भावना है। ये दोनों स्वर दायें बाएं सुनाई देंगे, तो हमारी नयी अर्थ व्यवस्था नया समाधान देने वाली होगी, कार्यकर बनेगी, सार्थक बनेगी। जहां मात्र एक ही स्वर सुनाई देगा, वहां समाधान नहीं मिलेगा। इसलिए हम दोनों सत्यांशों को मिलाएं, दोनों एक साथ हमारे कानों में बराबर गूंजते रहे तो न संपदा के साथ उन्माद बढ़ेगा और न गरीबी-भूखमरी रहेगी। एक नयी व्यवस्था में आदमी सुख की सांस ले सकेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म से आजीविका : इच्छा-परिणाम

भगवान् महावीर ने कहा—'इच्छा आकाश के समान अनन्त है।' यह धार्मिक दृष्टि से जितना सत्य है उतना ही अर्थशास्त्रीय दृष्टि से सत्य है। अर्थशास्त्र के अनुसार मांग से आवश्यकता का क्षेत्र बड़ा होता है। आवश्यकता मनुष्य की उस इच्छा को कहते हैं, जिसको पूरा करने के लिए उसके पास पर्याप्त धन हो और साथ ही वह मनुष्य उस धन को खर्च करने के लिये तैयार भी हो। मांग उस आवश्यकता को कहते हैं जिसकी संतुष्टि की जा चुकी है। इच्छा का क्षेत्र आवश्यकता से भी बड़ा होता है। सभी इच्छाएं आवश्यकताएं नहीं हो सकती, जब कि सभी आवश्यकताएं इच्छाएं अवश्य होती हैं। इच्छा से आवश्यकता का क्षेत्र संकुचित और मांग का क्षेत्र उससे भी संकुचित होता है।

इच्छा नैसर्गिक होती है। आवश्यकताएं भौगोलिक परिस्थिति, सामाजिक रीति-रिवाज, शारीरिक अपेक्षा, परिस्थिति और धार्मिक भावना के द्वारा निर्धारित होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्थिक परिस्थिति द्वारा आवश्यकता का निर्धारण

गरीब व्यक्ति की आवश्यकताएं सीमित होती हैं। वह केवल जीवन-रक्षक आवश्यकताओं को ही पूर्ण कर पाता है। धनी व्यक्ति की आवश्यकताएं उससे बहुत अधिक होती हैं। वह केवल जीवन-रक्षक आवश्यकताओं को ही पूर्ण नहीं करता, विलासितायुक्त आवश्यकताओं को भी पूर्ण करता है।

धार्मिक भावना के द्वारा आवश्यकता का निर्धारण

धार्मिक व्यक्ति की आवश्यकताएं नैतिक दृष्टि से प्रभावित होती हैं। वह जिन नैतिक आदर्शों को मानता है, उन्हीं के आधार पर अपनी आवश्यकताओं का निर्माण करता है। उसकी आवश्यकताएं बहुत कम और संतुलित होती हैं। किन्तु भौतिक मनोवृत्ति रखने वाले व्यक्ति की आवश्यकताएं उसकी तुलना में बहुत अधिक और बहुत प्रकार की होती हैं।

लाभ : लोभ

आवश्यकता का गढ़ा इतना गहरा है कि उसे कभी भरा नहीं जा सकता। इस सत्य की स्वीकृति धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र—दोनों ने की है। भगवान् महावीर ने कहा—'लाभ से लोभ बढ़ता है। जैसे-जैसे लाभ होता है वैसे-वैसे लोभ बढ़ता जाता है।' एक आवश्यकता पूर्ण होती है तो दूसरी नई आवश्यकता जन्म ले लेती है। आवश्यकता की इस विशेषता के आधार पर अशांति का नियम निश्चित किया गया। आवश्यकता की असीमितता के कारण मनुष्य की शांति भंग होती है।

अर्थशास्त्र में भी आवश्यकता की अपूरणीयता प्रतिपादित है। डॉ० मार्शल ने लिखा है—'मनुष्य की आवश्यकताएं और इच्छाएं असंख्य और अनेक प्रकार की होती हैं।'[1] यदि मनुष्य एक आवश्यकता को पूर्ण करता है तो दूसरी नई आवश्यकता सामने खड़ी हो जाती है। वह जीवन-पर्यन्त अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। अर्थशास्त्रियों ने आवश्यकता की इस विशेषता के आधार पर 'प्रगति का नियम' (Law of Progress) स्थापित किया। उनका मत है कि असीमित आवश्यकताओं के कारण ही नये-नये आविष्कार होते हैं। फलस्वरूप समाज की आर्थिक प्रगति होती है।

---

1. Dr. Alfred Marshall - Principles of Economics p. 73

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्थिक प्रगति का दृष्टिकोण

मनुष्य सामाजिक प्राणी है और सामाजिक जीवन का मुख्य आधार अर्थ है। इस दृष्टिकोण से आर्थिक प्रगति बहुत आवश्यक है। आवश्यकताओं के सीमित होने पर आर्थिक प्रगति को प्रोत्साहन नहीं मिलता। इसलिए आर्थिक विकास की दृष्टि से आवश्यकताओं का विस्तार जरूरी है। इसी वस्तु-सत्य को ध्यान में रखकर एक प्राचीन अर्थशास्त्री ने कहा था—'असंतुष्ट संन्यासी नष्ट हो जाता है और संतुष्ट राजा नष्ट होता है।' संन्यासी के लिए आवश्यकताओं को कम करना गुण है और उनका विस्तार करना दोष है। सामाजिक व्यक्ति के लिए आवश्यकताओं को कम करना दोष है और उनका विस्तार करना गुण है।

मानवीय एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण

मनुष्य सामाजिक प्राणी है—इस वास्तविकता के संदर्भ में अर्थशास्त्र का आवश्यकताओं को असीमित करने का दृष्टिकोण गलत नहीं है। किन्तु मनुष्य क्या केवल सामाजिक प्राणी ही है? क्या वह व्यक्ति नहीं है? क्या उसमें सुख-दुःख का संवेदन नहीं है? क्या असीमित आवश्यकता का दबाव उसमें शारीरिक और मानसिक तनाव पैदा नहीं करता? क्या आवश्यकता के विस्तार के पीछे खड़ा हुआ इच्छा का दैत्य शारीरिक ग्रन्थियों के स्राव को अस्त-व्यस्त और मानसिक विक्षोभ उत्पन्न नहीं कर देता? इन समस्याओं की ओर ध्यान न देकर ही हम आवश्यकताओं के विस्तार का ऐकान्तिक समर्थन कर सकते हैं किन्तु जब मनुष्य को मानवीय पहलू से देखते हैं तब हम इच्छाओं की असीमितता का समर्थन नहीं कर सकते। इस मानवीय और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से इच्छाओं को सीमित करना जरूरी है।

मध्यवर्ती सिद्धान्त

अर्थशास्त्रीय और धार्मिक—ये दोनों दृष्टिकोण अपने-अपने विषयक्षेत्र की दृष्टि में ही सत्य हैं। धर्मशास्त्र कहता है—'आवश्यकता को कम करो।' तब हमें इस सत्य की ओर से आंखें नहीं मूंद लेनी चाहिए कि यह प्रतिपादन मानसिक अशांति की समस्या को सामने रखकर किया गया है। अर्थशास्त्र कहता है—'आवश्यकताओं का विस्तार करो।' तब हमें इस वास्तविकता से आंखें नहीं मूंद लेनी चाहिए कि इस सिद्धान्त का प्रतिपादन मनुष्य की सुख-सुविधा के विकास को ध्यान में रखकर किया गया है। महावीर ने सामाजिक व्यक्ति के लिए अपरिग्रह की बात नहीं कही। वह मुनि के लिए संभव है। सामाजिक प्राणी के लिए उन्होंने इच्छा-परिमाण के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। सामाजिक मनुष्य इच्छाओं और आवश्यकताओं को समाप्त कर जीवन को नहीं चला सकता और उनका विस्तार कर शांतिपूर्ण जीवन नहीं जी सकता। इसलिए उन्होंने दोनों के मध्यवर्ती सिद्धान्त—इच्छा-परिमाण का प्रतिपादन किया।

मौलिक भिन्नता

जीवन के प्रति धर्मशास्त्र का जो दृष्टिकोण है, उससे अर्थशास्त्र का दृष्टिकोण मौलिक रूप से भिन्न है। धर्मशास्त्र जीवन की व्याख्या आंतरिक चेतना के विकास के पहलू से करता है। अर्थशास्त्र जीवन की व्याख्या आर्थिक क्रियाओं के माध्यम से करता है। दोनों व्याख्याओं की पृष्ठभूमि और दृष्टिकोण एक नहीं है इसलिए धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र का और अर्थशास्त्र धर्मशास्त्र का समर्थन नहीं करता। किन्तु धर्म और धन—दोनों का सामाजिक जीवन से सम्बन्ध होता है, इसलिए जीवन के कुछ बिन्दुओं पर उनका संगम होता है, वे एक-दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। भगवान् महावीर ने कहा—'इच्छाओं को संतोष से जीतो।' अग्नि में ईंधन डालकर उसे बुझाया नहीं जा सकता, वैसे ही इच्छा की पूर्ति के द्वारा इच्छाओं को संतुष्ट नहीं किया जा सकता। आवश्यकताओं की वृद्धि, वस्तुओं की वृद्धि, उत्पादन और श्रम की वृद्धि में योग देती है। किन्तु सुख और शांति में योग देती है—यह मान्यता भ्रांतिपूर्ण है। आवश्यकताओं की वृद्धि से जीवन का स्तर उन्नत होता है, किन्तु सुख और शांति का स्तर उन्नत होता है—यह नहीं माना जा सकता।

इच्छा परिमाण की सीमा-रेखा

धार्मिक मनुष्य भी सामाजिक प्राणी होता है। सामाजिक होने के कारण वह अनिवार्यता और सुविधा की कोटि की आवश्यकताओं को नहीं छोड़ पाता। महावीर ने गृहस्थ को उनके त्याग का निर्देश नहीं दिया। विलासिता कोटि की आवश्यकताएं धार्मिक को छोड़नी चाहिए—इस आधार पर 'इच्छा-परिमाण' की सीमा-रेखा खींची जा सकती है।

अनिवार्यता और सुविधा की कोटि की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए विलासिता कोटि की आवश्यकताओं और इच्छाओं का संयम करना आवश्यक है। इसमें आर्थिक विकास और उन्नत जीवन-स्तर की संभावनाओं का द्वार बन्द भी नहीं है तथा विलासिता के आधार पर होने वाली आर्थिक प्रगति और उन्नत जीवन-स्तर का द्वार खुला भी नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिभाषा अनिवार्यता की

अर्थशास्त्र के अनुसार अनिवार्यता, सुविधा और विलासिता की सीमा इस प्रकार है—सुख-दुःख के आधार के अनुसार आवश्यकताओं का वर्गीकरण इस बात से निर्धारित होता है कि किसी वस्तु के उपभोग से उपभोक्ता को सुख मिलता है या उपभोग न करने से उसे दुःख होता है। यदि किसी वस्तु के उपभोग से मनुष्य को थोड़ा-सा सुख मिलता है और उपभोग न करने से बहुत दुःख का अनुभव होता है तब ऐसी वस्तु को हम अनिवार्यता कहेंगे। यदि किसी वस्तु के उपभोग के मनुष्य को अनिवार्यता की अपेक्षा अधिक सुख मिलता है, परन्तु उसका उपभोग न करने से थोड़ा-सा दुःख होता है तब ऐसी वस्तु को हम सुविधा कहेंगे। यदि किसी वस्तु के उपभोग से मनुष्य को अनिवार्यता की अपेक्षा अधिक सुख मिलता है, परन्तु उसका उपभोग न करने से दुःख नहीं होता (सिवाय इसके कि जब मनुष्य उस वस्तु के उपभोग का आदी होता है) तब उसको विलासिता की वस्तु कहते हैं। यदि किसी वस्तु के उपभोग से अल्पकालिक सुख मिलता है तथा उपभोग न करने से बहुत कष्ट होता है तब उसको धनोत्सर्गिक वस्तु कहते हैं।[1]

सुख-दुःख के आधार पर आवश्यकताओं के इस वर्गीकरण को निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

वस्तुएं	वस्तु का उपभोग करने पर	वस्तु का उपभोग न करने पर
अनिवार्यताएं	थोड़ा-सा सुख मिलता है।	बहुत दुःख होता है।
सुखदायक वस्तुएं (सुविधाएं)	कुछ अधिक सुख मिलता है	थोड़ा दुःख होता है।
विलासिताएं	बहुत सुख मिलता है।	दुःख नहीं होता।

धर्म की दृष्टि

अर्थशास्त्री की दृष्टि में नैतिकता और शांति—ये सब गौण होते हैं। उसके सामने मुख्य प्रश्न आर्थिक प्रगति के द्वारा मानवीय कल्याण का होता है। इस आधार पर वह विलासिता का समर्थन करता है और आर्थिक प्रगति के लिए उसे आवश्यक

१ एम. एन. मेटा, आधुनिक अर्थशास्त्र पृ. ९०-९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानता है। धर्म-गुरु की दृष्टि में आर्थिक प्रगति का प्रश्न गौण होता है, नैतिकता और शांति का प्रश्न मुख्य होता है।

धर्म-गुरु सामाजिक व्यक्ति को धर्म में दीक्षित करता है, इसलिए वह उसकी आर्थिक अपेक्षाओं की सर्वथा अपेक्षा कर उसके लिए अपरिग्रह के नियमों की संरचना नहीं कर सकता। इस आधार पर 'इच्छा-परिमाण' व्रत के परिपार्श्व में महावीर ने इन नैतिक नियमों का निर्देश दिया—

१. झूठा तोल-माप न करना।

२. मिलावट न करना।

३. असली वस्तु दिखाकर नकली वस्तु न बेचना

इच्छा-परिमाण : नियामक तत्त्व

समाज के संदर्भ में इच्छा-परिमाण के नियामक तत्त्व दो हैं—प्रामाणिकता और करुणा। व्यक्ति के संदर्भ में उसका नियामक तत्त्व है—संयम। झूठा तोल-माप आदि न करने के पीछे प्रामाणिकता और करुणा की प्रेरणा है। व्यक्तिगत उपभोग कम करने के पीछे संयम की प्रेरणा है। महावीर के व्रती श्रावक अर्थार्जन में अप्रामाणिक साधनों का प्रयोग नहीं करते थे और व्यक्तिगत जीवन की सीमा रखते थे। धन के अर्जन में प्रामाणिक साधनों का उपयोग न करना, संग्रह की निश्चित सीमा करना और व्यक्तिगत उपभोग का संयम करना—ये तीनों मिलकर 'इच्छा-परिमाण' व्रत का निर्माण करते हैं।

प्रश्न धर्म और गरीबी का

यह आर्थिक विपन्नता का व्रत नहीं है। धर्म और गरीबी में कोई सम्बन्ध नहीं है। गरीब आदमी ही धार्मिक हो सकता है या धार्मिक को गरीब होना चाहिए—यह चिन्तन महावीर की दृष्टि में त्रुटिपूर्ण है। धर्म की आराधना न गरीब कर सकता है और न अमीर कर सकता है। जिसके मन में शान्ति की भावना जागृत हो जाती है, वह धर्म की आराधना कर सकता है, फिर चाहे वह गरीब हो या अमीर। धार्मिक व्यक्ति गरीबी और अमीरी—दोनों से दूर होकर त्यागी होता है।

जन्मना : कर्मणा

हमने धर्म को एक जाति का रूप दे दिया। हमारे युग के धार्मिक जन्मना धार्मिक हैं। जो व्यक्ति जिस परम्परा में जन्म लेता है, उस वंश-परम्परा का धर्म उसका धर्म हो जाता है।जन्मना धार्मिक के लिए इच्छा-परिमाण का व्रत अर्थवान्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। यह उन लोगों के लिए अर्थवान् है, जो कर्मणा धार्मिक होते हैं। ऐसे धार्मिक साधु संन्यासियों जितने विरल नहीं फिर भी जनसंख्या की अपेक्षा विरल ही होते हैं। इसलिए उनके आधार पर न तो आर्थिक मान्यताएं स्थापित होती हैं और न वे आर्थिक प्रगति में अवरोध बनते हैं। अधिकांश धार्मिक जन्मना धर्म के अनुयायी होते हैं। वे आवश्यकताओं की कमी, अर्थ-संग्रह की कमी, विलासिता के संयम और नैतिक नियमों में विश्वास नहीं करते। उनका धर्म नैतिकता-शून्य धर्म होता है। वे धार्मिक होने के साथ-साथ नैतिक होना आवश्यक नहीं मानते। वे धर्म के प्रति रुचि प्रदर्शित करते हैं, पर उनका आचारण नहीं करते। ऐसे धार्मिकों का धर्म आर्थिक प्रगति को प्रभावित नहीं करता।

आवश्यकता-वृद्धि का समर्थन

अर्थशास्त्र में आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यकता बढ़ाने का सिद्धान्त है। कुछ अर्थशास्त्री इसका मुक्त समर्थन करते हैं तो कुछ अर्थशास्त्री इसके मुक्त समर्थन के पक्ष में नहीं है। आवश्यकताओं को बढ़ाने के पक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत किए जाते

१. आवश्यकताओं की वृद्धि से मनुष्य को अधिकतम सुख या संतोष प्राप्त होता है।
२. आवश्यकताओं की वृद्धि सभ्यता के विकास और जीवन स्तर की उन्नति में सहायक होती है।
३. आवश्यकताओं की वृद्धि से, धन से उत्पादन में वृद्धि होती है।
४. आवश्यकताओं की वृद्धि से राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है फलतः वह राज्य सैनिक दृष्टिकोण से सशक्त और अपनी रक्षा में आत्मनिर्भर हो जाता है।

विपक्ष में तर्क

आवश्यकता को बढ़ाने के विपक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं—

१. आवश्यकताओं की वृद्धि से मनुष्य दुःख-क्लेश का अनुभव करता है।
२. आवश्यकताओं की वृद्धि और फिर उनकी संतुष्टि के लिए निरंतर प्रयत्न मनुष्य को भौतिकवादी बनाता है।
३. आवश्यकताओं की वृद्धि से समाज में वर्ग-संघर्ष (Class struggle) हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. आवश्यकताओं की वृद्धि से मनुष्य स्वार्थी हो जाता है और वह अधिक धन कमाने के लिए अप्रामाणिक साधनों का प्रयोग करता है।

आवश्यकता और संतुष्टि

अनेकान्त की दृष्टि से मीमांसा करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि सत्यांश दोनों के मध्य में है। आवश्यकताओं की अत्यन्त कमी में सामाजिक उन्नति नहीं होती—यह अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण मिथ्या नहीं है तो आवश्यकताओं की अत्यन्त वृद्धि होने पर दुःख या क्लेश बढ़ता है, यह दृष्टिकोण भी मिथ्या नहीं है। इस दूसरे दृष्टिकोण को धर्म का समर्थन भी प्राप्त है। अर्थशास्त्र का समर्थन इसलिए प्राप्त है कि मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र मानवीय कल्याण का शास्त्र है और इसका मुख्य उद्देश्य मानवीय कल्याण में वृद्धि करना है।[1] सीमित साधनों में असीमित आवश्यकताओं की संतुष्टि का पथ प्रदर्शित करना अर्थशास्त्र का कार्य है किन्तु जिस अनुपात में आवश्यकताओं की वृद्धि की जा सकती है उसी अनुपात में उनकी संतुष्टि नहीं की जा सकती। अधिकांश लोग अपनी तीव्र आवश्यकताओं (अनिवार्यताओं) की संतुष्टि कर पाते हैं। मध्यम आवश्यकताओं (सुविधाओं) की संतुष्टि अपेक्षाकृत कम लोग कर पाते हैं। मन्द आवश्यकताओं (विलासिताओं) की संतुष्टि कुछ ही लोग कर पाते हैं।

आवश्यकता-वृद्धि से जुड़ी समस्याएं

इस क्रम के साथ महावीर के दृष्टिकोण—'लाभ से लोभ बढ़ता है'—का अध्ययन करने पर यह फलित होता है कि आवश्यकताओं की वृद्धि के क्रम में कुछ आवश्यकताओं की संतुष्टि की जा सकती है, किन्तु उनकी वृद्धि के साथ उभरने वाले मानसिक असंतोष और अशान्ति की चिकित्सा नहीं की जा सकती। अर्थशास्त्र द्वारा प्रस्तुत मानव के भौतिक कल्याण की वेदी पर मानव की मानसिक शान्ति की आहुति नहीं दी जा सकती। इसलिए भौतिक कल्याण और आध्यात्मिक कल्याण के मध्य सामंजस्य स्थापित करना अनिवार्य है। यदि मनुष्य समाज को मानसिक तनाव, पागलपन, क्रूरता, शोषण, आक्रमण, और उच्छृंखल प्रवृत्तियों से बचाना इष्ट है तो यह अनिवार्यता और अधिक तीव्र हो जाती है। इसी अनिवार्यता की अनुभूति करके ही महावीर ने समाज के सामने 'इच्छा-परिमाण' का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इस आदर्श

1. अल्फ्रेड मार्शल, Principles of Economics, p 1.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में अनिवार्यताओं और सुविधाओं को छोड़ने की शर्त नहीं है और विलासितापूर्ण आवश्यकताओं की परम्परा को चालू रखने की स्वीकृति भी नहीं है।

उपभोग का समर्थन

'इच्छा-परिमाण' के सिद्धान्त की अर्थशास्त्रीय आवश्यकता-वृद्धि के सिद्धान्त से मौलिक भिन्नता दो विषयों की है। पहली भिन्नता यह है—अर्थशास्त्र विलासिताओं के उपभोग का समर्थन करता है। उसके समर्थन में निम्न तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं—

१. विलासिताओं के उपभोग से सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति होती है।
२. कर्मशीलता को प्रोत्साहन मिलता है।
३. जीवन-स्तर ऊंचा होता है।
४. धन संग्रह होता है। संकट के समय वह (आभूषण आदि) सहायक सिद्ध होता है।
५. कला-कौशल, कारीगरी तथा उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन मिलता है।

उपभोग का विरोध

सब अर्थशास्त्री इन विलासिताओं के उपभोग के सिद्धान्त का समर्थन नहीं करते। उनका दृष्टिकोण यह है कि विलासिताओं के उपभोग से—

१. वर्ग-विषमता (Class inequality) बढ़ती है।
२. उत्पादन-कार्यों के लिए पूंजी की कमी हो जाती है।
३. निर्धन वर्ग पर प्रतिकूल प्रभाव होता है, द्वेष तथा घृणा की वृद्धि होती है।

विलासिता के प्रति यह दृष्टिकोण धर्म के दृष्टिकोण के भिन्न नहीं है, किन्तु विलासिता के समर्थन का अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण उससे सर्वथा भिन्न है।

प्रश्न नैतिकता का

दूसरी भिन्नता यह है कि अर्थशास्त्र के नैतिक नियमों की अनिवार्यता स्वीकृत नहीं है। नैतिक नियमों की अवहेलना उसका उद्देश्य नहीं है, किन्तु यह उसकी प्रकृति का प्रश्न है। उसकी प्रकृति उपयोगिता है। उपयोगिता का अर्थ है—आवश्यकता को संतुष्ट करने की क्षमता। नैतिक नियम के अनुसार शराब मनुष्य के लिए लाभदायी नहीं है, इसलिए वह उपयोगी भी नहीं है। वही वस्तु उपयोगी हो सकती है, जो लाभदायी हो। जो प्रवृत्तिकाल और परिणाम-काल—दोनों में सुखद न हो, वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाभदायक नहीं हो सकती और जो लाभदायक नहीं हो सकती, वह उपयोगी नहीं हो सकती।

अर्थशास्त्र का मत

अर्थशास्त्र में उपयोगिता की परिभाषा नैतिकता की परिभाषा से भिन्न है। उसमें उपयोगिता के साथ लाभदायिकता का अनुबन्ध नहीं है। आवश्यकता को संतुष्ट करने वाली वस्तु लाभदायी न होने पर भी उपयोगी हो सकती है। मद्यपान निश्चित रूप से हानिकारक है किन्तु मद्य में मद्यप के लिए एक उपयोगिता है। मद्यप मद्य की आवश्यकता का अनुभव करता है और मद्य उसकी आवश्यकता को संतुष्ट करता है। प्रो० रोबिन्स का मत है कि अर्थशास्त्र में ऐसे अनेक विषयों का अध्ययन किया जाता है, जिसका मानवीय कल्याण से दूर का भी सम्बन्ध नहीं होता। मद्य पीने से मनुष्य के कल्याण अथवा सुख में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं होती, प्रत्युत कमी होने की सम्भावना है। फिर भी मद्य-उद्योग का अर्थशास्त्र में अध्ययन होता है, क्योंकि मद्य-निर्माण एक आर्थिक कार्य है और अनेक व्यक्ति इस उद्योग से अपनी आजीविका कमाते हैं।

अन्तर है प्रकृति का

धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण का यह अन्तर उसकी प्रकृति का अन्तर है। दोनों की प्रकृति का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है—

१. नैतिक नियम मनुष्य के सामने जीवन का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। आर्थिक नियम मानवीय आचरण के आर्थिक पहलुओं का अध्ययन करते हैं।

२. नैतिक नियमों की अवहेलना करने पर मनुष्य को आत्मग्लानि होती है। आर्थिक नियमों का अतिक्रमण करने पर आत्मग्लानि नहीं होती।

३. नैतिक नियमों का पालन करने पर मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति होती है। आर्थिक नियमों का पालन करने पर आर्थिक उन्नति होती है।

नीतिशास्त्र का अर्थशास्त्र पर प्रभाव

अर्थशास्त्र में नैतिकता के लिए सर्वथा अवकाश नहीं है ऐसी बात नहीं है। ईमानदारी, निष्कपटता आदि गुणों को कार्य-कुशलता का निर्धारण करने वाले तत्त्वों के रूप में स्वीकार करने वाले अर्थशास्त्री नैतिकता की सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सकते। अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र—ये दोनों समाजशास्त्र के ही अंग हैं। इन दोनों में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानवीय व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। अर्थशास्त्र में मानवीय व्यवहार के आर्थिक पहलू का और नीतिशास्त्र में उसके आदर्शात्मक पहलू का अध्ययन किया जाता है। नीतिशास्त्र आदर्श प्रस्तुत करता है। वह हमें बताता है, कि हमारा आचरण कैसा होना चाहिए। नीतिशास्त्र उचित और अनुचित में भेद करने का आदेश देता है और हमें बताता है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। अर्थशास्त्री आर्थिक निर्णय सुनाते तथा व्यवस्था देते समय नीतिशास्त्र के निर्देशों की उपेक्षा नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ डॉ० मार्शल ने सदाचार के आधार पर अपनी 'उत्पादक श्रम' की धारणा से वेश्यावृत्ति को बाहर निकाल दिया। जैसा कि प्रो० सैलिगमैन (Saligman) ने कहा है—'सच्ची आर्थिक क्रिया परिणामतः सदाचारिक होनी चाहिए।' इस प्रकार अर्थशास्त्री आर्थिक नीति के निर्माण में नीतिशास्त्र की उपेक्षा नहीं कर पाता।

अर्थशास्त्र का नीतिशास्त्र पर प्रभाव

इसी प्रकार अर्थशास्त्र का नीतिशास्त्र पर भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। आर्थिक परिस्थितियां मनुष्य के चरित्र तथा आचार-विचार पर गहरा प्रभाव डालती हैं। अमुक व्यक्ति का आचार कैसा होगा, यह इस बात से निश्चित होता है कि वह अपनी आजीविका कैसे कमाता है। इस प्रकार अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

महावीर ने कहा—'इच्छा का परिमाण नहीं करने वाला मनुष्य अधर्म से आजीविका कमाता है और इच्छा का परिमाण करने वाला मनुष्य धर्म से आजीविका कमाता है।' अधर्म या धर्म से आजीविका कमाने में आर्थिक परिस्थितियां निमित्त बनती हैं, किन्तु उनका उपादान कारण अनासक्ति तथा धर्मश्रद्धा का तारतम्य है।

इच्छा परिमाण के निष्कर्ष

'इच्छा-परिमाण' के निष्कर्ष संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किए जा सकते हैं—

१. न गरीबी और न विलासिता का जीवन।
२. धन आवश्यकता-पूर्ति का साधन है, साध्य नहीं। धन मनुष्य के लिए है, मनुष्य धन के लिए नहीं है।
३. आवश्यकता की सन्तुष्टि के लिए धन का अर्जन किन्तु दूसरों को हानि पहुंचाकर अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि न हो, इसका जागरूक प्रयत्न।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. आवश्यकताओं, सुख-सुविधाओं और उनकी संतुष्टि के साधनभूत धन-संग्रह की सीमा का निर्धारण।

५. धन के प्रति उपयोगिता के दृष्टिकोण का निर्माण कर संगृहीत धन में अनासक्ति का विकास।

६. धन के संतुष्टि-गुण को स्वीकार करते हुए आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से उसकी असारता का अनुचिन्तन।

७. विसर्जन की क्षमता का विकास।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा : समाधान

प्रश्न—महावीर ने उत्पादन के विषय में क्या विचार दिये हैं?

उत्तर—महावीर ने उत्पादन के बारे में कोई विचार नहीं दिया, किन्तु उत्पादन की समस्या के बारे में विचार जरूर दिया है। आज उत्पादन वृद्धि गरीबी मिटाने के लिए नहीं है, वह बाजार भावों को स्थिर करने के लिए है। अगर ज्यादा उत्पादन होता है तो उसे समुद्र में डाल दिया जाता है, जिससे बाजार स्थिर रहे। उत्पादन का लक्ष्य गरीबी मिटाना नहीं, बाजार को स्थिर बनाए रखना है। यदि उत्पादन का लक्ष्य गरीबी मिटाना होता तो लाखों टन अनाज समुद्र में नहीं फेंका जाता। महावीर ने कहा—क्रूरतापूर्ण कार्य मत करो, मानवीय संवेदना को गौण मत करो। अगर मानवीय संवेदना रहेगी तो गरीबी और भूखमरी की स्थिति में हजारों-लाखों टन खाद्य-पदार्थ नष्ट नहीं किये जाएंगे।

प्रश्न—दो व्यक्ति बराबर श्रम करते हैं। एक के अच्छी उपज हो जाती है, दूसरे के ओला-पाला पड़ जाता है। क्या यह पूर्वजन्म के कर्मों का फल नहीं है?

उत्तर—इसमें पूर्व जन्म के कर्मों का ही फल क्यों मानें? वर्तमान का ही मान लें। कर्म का संबंध नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। किसी घटना में हो भी सकता है किन्तु इसमें एक कारण पवित्र भावना भी है। एक आदमी ने अच्छे विचार से खेती की, पवित्र मन से खेती की। दूसरे ने शुद्ध मन से नहीं की, खराब कल्पना आ गई। ऐसे में परिणाम बदल जायेगा। एक छोटी-सी कहानी है—

दो किसान अपने खेतों की ओर जा रहे थे। रास्ते में साधु मिले। उनका सिर मुंडा हुआ था। एक ने देखा और सोचा—

मस्तक मुंड पाग सिर नाहीं।
कड़प हुसी पर सिट्ठा नाहीं।

इसका माथा मुंडा हुआ है। इसलिए कड़वी तो होगी, पर सिट्ठा नहीं होगा। दूसरे ने देखा, उसके मन में भाव आया—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक देख नै हुयो खुशी।
इणरे माथे जिसा सिट्टा हुसी।

वह खुश हो गया। इतना बड़ा माथा है तो इसके बराबर ही सिट्टे होंगे। ठीक ऐसे ही हुआ। एक के खेत में बड़े-बड़े बाजरे के सिट्टे लगे, दूसरे खेत के मालिक को केवल कड़प से ही संतोष करना पड़ा। वैज्ञानिकों ने इस विषय पर बड़ी शोध की, बहुत प्रयोग किये। एक पौधे को बड़े पवित्र भावों के साथ सींचा गया और दूसरे को अपवित्र भावों के साथ। पहला कुछ ही दिनों में लहलहा उठा और दूसरा मुरझा कर सूख गया। कर्म भी एक कारण हो सकता है, पर हर जगह यही कारण हो, ऐसी बात नहीं है। ऐसा सोचना ऐकान्तिक बात होगी।

प्रश्न—हिन्दुस्तान बड़ा मुल्क है, फिर भी पाकिस्तान जैसे छोटे से देश से क्यों डरता है?

उत्तर—दोनों एक-दूसरे से डर रहे हैं। हिन्दुस्तान को डर यह है कि पाकिस्तान अपने को इतने आधुनिक हथियारों से लैस कर रहा है और अभी-अभी वहां के पूर्व प्रधानमंत्री ने परमाणु हथियार होने की बात भी स्वीकार की है। डर यही है कि जब भी उसका उपयोग होगा, हिन्दुस्तान के खिलाफ ही होगा। ठीक ऐसा ही डर पाकिस्तान को भी है। दोनों देशों में बेहिसाब गरीबी है। शिक्षा, चिकित्सा, खाद्यान्न जैसी समस्याओं से दोनों जूझ रहे हैं, किन्तु अविश्वास और डर दोनों को सुरक्षा पर भारी व्यय करा रहा है। यदि अविश्वास के बादल छंट जाएं, संदेह का माहौल न रहे तो भय भी विलीन हो जाए।

प्रश्न—संग्रह और प्रभुत्व की मानसिकता में कैसे परिवर्तन आ सकता है?

उत्तर—वर्षों पहले की बात है। पूज्य गुरुदेव गंगाशहर में विराज रहे थे। श्री राजीव गांधी वहां आए। गुरुदेव ने उनसे कहा—'आप इन्दिराजी को हमारा एक संदेश दे देना कि आज केवल व्यवस्था परिवर्तन की बात हो रही है और वह भी दण्डशक्ति के द्वारा। यह दण्डशक्ति एक सीमा तक आवश्यक हो सकती है, किन्तु यदि हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ तो दण्डशक्ति के द्वारा किया जा रहा यह व्यवस्था-परिवर्तन कारगर नहीं होगा, स्थायी नहीं होगा।'

एक सीमा तक दण्डशक्ति और उसके साथ हृदय-परिवर्तन का प्रशिक्षण—दोनों साथ-साथ चलें, तभी व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन हो सकेगा, प्रभुत्व की मानसिकता में बदलाव आएगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिवर्तन का सूत्र है— व्यवस्था भी बदले, व्यक्ति का हृदय भी बदले। दोनों संयुक्त रूप से चलें, तभी परिवर्तन की परिकल्पना साकार हो सकेगी।

प्रश्न—मनुष्य का कर्त्तव्य श्रेष्ठता में परिलक्षित होता है तो फिर श्रेष्ठता के बढ़ने में रुकावट क्यों डाली जाये? उसकी सीमा क्यों की जाए?

उत्तर—श्रेष्ठता के बढ़ने में कोई रुकावट नहीं डाली जानी चाहिए और वह वांछनीय भी नहीं है किन्तु श्रेष्ठता का मुखौटा पहन कर अश्रेष्ठता आए, इसकी रुकावट अवश्य होनी चाहिए। आज खतरा इस बात का है कि वे साधन और सामग्रियां मनुष्य में अश्रेष्ठता पैदा कर रही हैं। उनकी रुकावट होनी चाहिए।

किसी देश ने कैंसर या एड्स की सफल दवा का आविष्कार किया। उसका आयात न हो, यह कभी वांछनीय नहीं हो सकता। हर वस्तु का विवेक के साथ संयम होता है। यह नहीं होना चाहिए कि गौ मांस का भी निर्यात करें डालर या किसी अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा के लिए। यह वांछनीय नहीं है। आज ऐसा हो रहा है कि बढ़िया वस्तुओं का तो निर्यात होता है। जहां पैदा होती है, वहां के लोगों को तो देखने को भी नहीं मिलती, दूसरे देशों में भेज दी जाती हैं और आयात होता है विलासिता की वस्तुओं का। रोटी की समस्या भी जहां न सुलझ रही हो, वहां विलासिता की वस्तुओं का आयात निरी मूर्खता के सिवा और कुछ नहीं है। कोई भी समझदार शासक या दल सर्वप्रथम यह देखेगा कि राष्ट्र की प्राथमिक आवश्यकताएं पूरी हो रही हैं या नहीं। इस दिशा में न सोचकर विलास-सामग्री का आयात करना क्या अश्रेष्ठता का प्रवेश नहीं है? इसकी रुकावट अवश्य होनी चाहिए।

प्रश्न—साम्यवादी शासन में नियंत्रण था पर अशान्ति नहीं थी। जैसे ही खुलापन आया है, समस्याएं गंभीर बन रही हैं। आप इस संदर्भ में क्या सोचते हैं?

उत्तर—साम्यवादी शासन के सात दशक में इतना नियंत्रण था कि आदमी को यह सोचने की भी स्वतन्त्रता नहीं थी कि मैं शान्ति में हूं या अशान्ति में। एक यंत्र का पुर्जा जैसा बना हुआ था। अब नियंत्रण हटा है, कुछ सोचने की, बोलने और लिखने की स्वतन्त्रता मिली है, तब वह अपनी समस्याओं पर विचार कर रहा है। आज यह आभास मिलता है, शायद प्राथमिक आवश्यकताओं की जितनी कमी वहां है, उतनी और कहीं नहीं। विमान, तोप और प्रक्षेपास्त्र बनाने वाले, अंतरिक्ष में उपग्रह छोड़ने और प्रयोगशाला स्थापित करने वाले उस साम्यवादी देश में डबलरोटी के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए भी लम्बी लाइन लगती है। ये सारी विपरीत अवधारणाएं चलीं—शस्त्र-निर्माण और अंतरिक्षयान के निर्माण में तो अपरिमित राशि खर्च कर दी और प्राथमिक आवश्यकताओं पर ध्यान ही नहीं दिया। अब लौहावरण के हटने पर सब कुछ साफ दिखाई देने लगा है कि वहां न तो कभी शान्ति थी और न अहिंसा थी। इसकी बात अब वे करने लगे हैं। यह शान्ति और अहिंसा की बात प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद ही समझ में आती है।

प्रश्न—संयुक्त परिवार की परम्परा टूट रही है। परिवार बिखरते जा रहे हैं। इसका मूल कारण क्या है?

उत्तर—परिवार का मुखिया जितना सहिष्णु और संतुलित होना चाहिए, उतना आज नहीं होता, यह पहली कमी दिखाई दे रही है। पूज्य गुरुदेव ने परिवार या समाज के मुखिया के लिए एक सूत्र दिया था—समता, क्षमता और ममता का। ये तीन बातें हों तो परिवार बिखरेगा नहीं। मुखिया में समता होनी चाहिए, उसका दृष्टिकोण सम होना चाहिए। चार पुत्र हैं तो चारों के प्रति समान दृष्टिकोण हो। क्षमता—सहिष्णुता भी होनी चाहिए। परिवार में नाना रुचि के, नाना स्वभाव के लोग होते हैं। जहां तक हो सके, उनकी बातों को सहन करना चाहिए। सबके प्रति ममता—अपनत्व का भाव रहे। यह परिवार को एक रखने का बहुत बड़ा साधन है।

एक समस्या यह है—वर्तमान में आकर्षण बहुत पैदा हो गए हैं और अनेक गलत धारणाएं पैदा हो गई हैं। उनमें स्वतन्त्रता की मिथ्या धारणा प्रमुख है। चार भाई हैं, उनमें से तीन कमजोर हैं। पहले चिन्तन यह होता था—एक भाई उन तीनों को साथ लेकर चलता था, उन्हें सहारा देता था। आज चिंतन यह हो गया है कि हम इनके साथ पिछड़े क्यों रहें। विकास करें, आगे बढ़ें, हमें इनसे क्या लेना-देना है? इस स्वार्थवृत्ति के विकास ने भी परिवारों को तोड़ा है। वर्तमान का एक और चिंतन इसके लिए उत्तरदायी है—सभी स्वतन्त्र रहना चाहते हैं, कोई किसी के अधीन या पीछे चलना नहीं चाहता। ये सब ऐसे कारण हैं, जिनसे बिखराव की स्थिति बनती है।

प्रश्न—नैतिकता अच्छी है, हर व्यक्ति नैतिक होना चाहता है किन्तु मौका आने पर अनैतिक बन जाता है, क्यों?

उत्तर—आप इस बात को समझ लें कि नैतिकता अच्छी है, आदमी नैतिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनना चाहता है, मात्र इतने से ही वह नैतिक नहीं बन सकता। उसके लिए साधना और अभ्यास जरूरी है। जीवन विज्ञान यही तो कहता है कि अच्छी बातें पढ़ने से ही आदमी अच्छा नहीं बनेगा। अच्छी बात का अभ्यास करने से आदमी अच्छा बनेगा। कौन व्यक्ति ऐसा है, जो अच्छाई और बुराई को नहीं जानता? किन्तु वह अच्छाई सीखने का अभ्यास नहीं करता। आप सिर्फ एक सूत्र को याद कर लें—'अच्छी बात पढ़ने-सुनने से आदमी अच्छा नहीं बनता, अच्छी बात का अभ्यास करने से आदमी अच्छा बनता है।'

प्रश्न—विकास की वर्तमान अवधारणा से चरित्र-विकास नहीं हो रहा है। क्या इसके लिए विकास के वर्तमान मानक उत्तरदायी हैं? चरित्र-विकास के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर—प्रोडक्शन और कंजम्प्शन—ये विकास के मानदण्ड बन गए। आप जानते ही होंगे—जिन राष्ट्रों में विकास की यह अवधारणा बनी, आज वहां भी अन्तर्द्वन्द्व छिड़ गया है। विकास की यह अवधारणा ठीक नहीं है, इस पर वहां भी बहस छिड़ी हुई है। विकास की अवधारणा को बदलना पड़ेगा। विकास की अवधारणा में चरित्र की अवधारणा को भी जोड़ना पड़ेगा। पदार्थ मिले और उसके साथ चरित्र भी विकसित हो तो वह विकास की एक समग्र अवधारणा होगी। आज की इस अधूरी सचाई ने, अधूरी अवधारणा ने चरित्र को भ्रष्ट किया है, मानवीय मूल्यों का ह्रास किया है और इतनी अशान्ति दी है कि कल तक जो विकास की यह परिभाषा करते थे, आज उनमें भी एक नया चिंतन शुरू हुआ है। मार्क्सवादी चिंतकों में भी विकास की इस आवधारणा को लेकर दो खेमें बन गए हैं। इसलिए विकास के बारे में नए सिरे से सोचना होगा। अर्थशास्त्रीय अवधारणा चारित्रिक मूल्यों से अनुस्यूत और अनुप्राणित बने तभी उसके विकास की संभावना की जा सकती है।

प्रश्न—महावीर की अर्थनीति के जो सूत्र हैं, वे पूंजीवाद की ओर ज्यादा झुके हैं या साम्यवाद की ओर?

उत्तर—महावीर का दृष्टिकोण सापेक्षवादी दृष्टिकोण है। अगर हम उनके सिद्धान्तों को पढ़ें तो उन्हें सोशलिज्म की अपेक्षा विकेन्द्रित अर्थनीति कहें तो ज्यादा ठीक होगा। जैसे साम्यवाद और पूंजीवाद केन्द्रित अर्थनीति में हैं, महावीर के दर्शन में ये दोनों नहीं हैं। दोनों से परे तीसरी विकेन्द्रित अर्थनीति पर महावीर के सूत्र ज्यादा फलित होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—एक ओर हम प्रकृति की बात करते हैं, कहा जाता है—जीवो जीवस्य जीवनम्, दूसरी ओर हम अहिंसा की बात करते हैं। यह विरोधाभास क्यों?

उत्तर—हमारी कठिनाई यही है कि हम किसी बात को सापेक्ष दृष्टि से नहीं देखते। जीवो जीवस्य जीवनम्—यह सापेक्ष बात है। जीव जीव का जीवन है, यह समुद्र में मछली के लिए लागू होता है। वहां एक जीव दूसरे जीव का भोजन है। यह नियम जंगली जानवरों, हिंसक पशुओं पर लागू होता है, मनुष्यों पर नहीं। मनुष्यों के लिए तो कहा गया—मात्स्य न्याय नहीं होना चाहिए। बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, यह मात्स्य न्याय है। यह सिद्धान्त मनुष्य के लिए नहीं है, उनके लिए है, जिनके पास कोई विकल्प नहीं है। मनुष्य का ग्रंथितंत्र और नाड़ीतंत्र इतना विकसित है कि वह बहुत बड़ा परिवर्तन कर सकता है। उसके लिए यह नियम लागू नहीं है।

प्रश्न—देश काल की स्थितियां आज बदल रही हैं। ऐसे में कौन-सा रास्ता अपनाएं? आवश्यकता की सीमा क्या हो?

उत्तर—पंखा आवश्यक हो सकता है, इसमें कोई खास बात नहीं है। किन्तु सुविधा के नाम पर अनावश्यक को आवश्यक न बनाएं। होठों पर लिपस्टिक लगाना, पशुओं को मारकर उनकी खाल जैसी बालों को पहनना, ओढ़ना—यह क्यों आवश्यक है? बहुत सारी अनावश्यक बातें हैं, जिन्हें इस विज्ञापन की दुनिया ने आवश्यक बना दिया है। हमारी वासनाएं उभारी हैं इन कृत्रिम आवश्यकताओं ने। हम यथार्थ के आधार पर चलें तो हमारे जीवन की जितनी मौलिक आवश्यकताएं हैं, उन्हें एक आवश्यक सीमा तक तो स्वीकार कर लें, शेष को अस्वीकार करें तो ज्यादा हितकर होगा। एक समय था जब आदमी खुले प्रांगण में रहता था। खुली हवा, खुला प्रकाश। आज सब कुछ कितना बदल गया। बिजली का प्रकाश, पंखे की हवा। प्रकृति से जैसे दूर हो गए। आज ये अनावश्यक चीजें आवश्यक जैसी बन गई हैं, किन्तु चिंतन स्वयं करें कि इनसे हमें लाभ हुआ है या नुकसान? स्वास्थ्य इनसे सुधरा है या बिगड़ा है? बीमारियां इन साधनों ने मिटाई हैं या बढ़ाई हैं? यदि हम इस दृष्टि से सोचेंगे तो सचमुच जीवन की कृत्रिम आवश्यकताओं से मुक्ति की बात समझ में आ जाएगी।

प्रश्न—क्या विकेन्द्रित अर्थनीति के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण जरूरी है? सत्ता केन्द्रित हो और अर्थव्यवस्था विकेन्द्रित—यह संभव है?

उत्तर—विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था होगी तो शासन भी विकेन्द्रित होगा, समाज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की व्यवस्था भी विकेन्द्रित होगी। यह कभी नहीं हो सकता कि सत्ता केन्द्रित है और अर्थव्यवस्था विकेन्द्रित हो जाये। सत्ता विकेन्द्रित हो और अर्थव्यवस्था केन्द्रित हो, यह भी संभव नहीं। विकेन्द्रीकरण होगा तो सत्ता में, अर्थव्यवस्था में, जीवन की प्रणाली में—सब में होगा। समाज-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था—दोनों साथ-साथ चलती हैं। सत्ता-केन्द्रित अर्थव्यवस्था बनी तो साम्यवाद में अधिनायकवाद जन्मा। जबकि साम्यवाद का संकल्प था स्टेटलेस सोसायटी का। जहां अर्थव्यवस्था केन्द्रित होती है वहां अधिनायकवाद की अनिवार्यता हो जाती है। यह प्रमाणित हो चुका है इसलिए यह मान कर चलें कि समाज-व्यवस्था और अर्थव्यवस्था दोनों साथ-साथ बदलेंगी। केवल एक को नहीं बदला जा सकता।

प्रश्न—नये अर्थशास्त्र में आबादी पर कंट्रोल कैसे हो, इसका क्या प्रावधान है?

उत्तर—हमारा चिंतन है—आदमी भूखा और गरीब नहीं है तो आबादी नहीं बढ़ेगी। गरीबी के साथ आबादी का निकट का सम्बन्ध है। गरीबी जितनी बढ़ेगी, आबादी भी उतनी ही बढ़ेगी। जिस दिन भूख मिट जायेगी, पोषण ठीक मिलेगा, आबादी की दर घट जायेगी। कुपोषण और जनसंख्या की वृद्धि का गहरा नाता है। कोई भी इसका विश्लेषण कर सकता है—गरीब आदमी के जितनी संतानें होती हैं, सामान्य आदमी के उतनी नहीं होतीं।

प्रश्न—छठा कालखंड कब आएगा? क्या उस समय आने वाली स्थितियों को टाला जा सकता है?

उत्तर—छठे आरे में अभी हजारों वर्ष बाकी हैं। हो सकता है—इसी प्रकार औद्योगीकरण चलता रहे, ओजोन की छतरी का छेद बढ़ता चला जाए तो संभव है— हजारों वर्ष बाद आने वाला कालखण्ड पहले ही आ जाए।

आने वाली कठिनाइयों को, कालखण्ड को टाला जा सके, यह तो बड़ा कठिन काम है। आज भी यथार्थ पर चिंतन करने वाले लोग बहुत कम हैं और सुख-सुविधा पर चिंतन करने वाले बहुत ज्यादा हैं। हमने ऐसे लोगों को भी सुना है, जो कहते हैं। शराब पीते-पीते मर जाएं तो चिन्ता की कौन-सी बात है। आखिर एक दिन तो मरना ही है। मनोवृत्ति ही कुछ ऐसी हो गई है आज के आदमी की। इस स्थिति में क्या भविष्यवाणी की जा सकती है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—मस्तिष्कीय परिवर्तन के लिए क्या करना चाहिए? उसका सर्वोत्तम उपाय क्या है?

उत्तर—यदि मस्तिष्कीय प्रशिक्षण की पद्धति शिक्षा के साथ जुड़े तो व्यापक परिवर्तन की संभावना की जा सकती है। भीतर से बदलना है, मस्तिष्क का परिवर्तन करना है तो यह काम शिक्षा से शुरू करना होगा।

प्रश्न—प्रकंपन का क्या सिद्धान्त है? इसके बारे में जानकारी बहुत कम है। क्या यह विज्ञान भारतीय दर्शन की उपज है?

उत्तर—प्रकंपन का पूरा एक सिद्धान्त है किन्तु जानकारी इसलिए नहीं है कि आज का विज्ञान महज चार सौ वर्ष पुराना है। भारत के विज्ञान से आप परिचित नहीं हैं। सारा का सारा विज्ञान पश्चिम से आयातित है। आज की सारी शिक्षा चाहे वह टेक्नोलोजी की हो या साइंस की, पश्चिम से ली हुई है। प्राचीन भारतीय विद्या के साथ हमारा कोई संपर्क नहीं है। क्योंकि वह सारी विद्या है संस्कृत, प्राकृत में और आज ये भाषाएं उपेक्षित हैं। सारा शिक्षण मुख्यत: अंग्रेजी के माध्यम से होता है। अंग्रेजी के माध्यम से तो जो पाश्चात्य देशों में हुआ या हो रहा है, वही चिंतन सामने आयेगा। इसीलिए पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि शिक्षा का भारतीयकरण होना चाहिए। भारतीय विद्याओं का भी आज की शिक्षा में समावेश होना चाहिए। सुना है—इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में एक ऐसा डिपार्टमेंट बना है, जो प्राचीन भारतीय विज्ञान पर खोज करेगा। इस सन्दर्भ में कुछ साहित्य वहां से निकलना शुरू हुआ है। वहां के कुछ विद्वान् हमसे मिले थे और उन्होंने बताया कि ऐसा काम हम वहां कर रहे हैं। इस संदर्भ में वे हमारा सहयोग चाहते थे। वस्तुत: प्रकंपन का सिद्धान्त भारतीय दर्शन ने हजारों वर्ष पूर्व प्रस्तुत किया है। यदि हम भारत की आत्मा से जुड़ें तो हमें ऐसी अनेक सचाइयों का साक्षात्कार होगा। विज्ञान जो कह रहा है, उस सत्य को भारतीय वैज्ञानिक हजारों वर्ष पहले उद्घाटित कर चुके थे। हम अपनी संपदा को पहचानें तो इस संदर्भ में बहुत समृद्ध बन सकते हैं।

प्रश्न—आचारशास्त्रीय दृष्टि से अच्छे मानव का प्रारूप क्या हो सकता है?

उत्तर—आचारशास्त्रीय दृष्टि से समाज-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था आदि के संदर्भ में हम देखें तो अणुव्रत की आचार-संहिता सामने आती है, वह अच्छे आदमी का एक पूरा प्रारूप हमारे सामने प्रस्तुत करती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—फाइव स्टार होटल में रहना पसंद करने वाला व्यक्ति आंतरिक परिवर्तन की साधना कर पाएगा?

उत्तर—आंतरिक परिवर्तन पर हमारा ध्यान नहीं गया इसीलिए व्यक्ति फाइव स्टार होटल में रहना चाहता है। अगर संन्यासी है और वह आन्तरिक परिवर्तन की साधना करता है तो उसका जीवन भिन्न प्रकार होगा। आप देखेंगे कि हम लोग जहां बैठते हैं, वहां पंखा भी नहीं चलता, एयरकंडीशनर की तो बात ही दूर है। भीतरी संवेगों का जब तक परिवर्तन नहीं करेंगे, तब तक फाइवस्टार होटल मनुष्य के दिमाग में घूमता रहेगा। वस्तुतः व्यक्ति फाइवस्टार होटल में नहीं रहता, उसके दिमाग में फाइव स्टार होटल रहती है।

राजा ने संन्यासी से कहा—'आप भी महल में रहे और मैं भी महल में रहा फिर फर्क क्या रहा?' संन्यासी ने कहा—'कुछ ज्यादा फर्क नहीं रहा। फर्क बस इतना रहा कि मैं तुम्हारे महल में रहा और महल तुम्हारे मन में रहा।'

दिमाग से यह महल कैसे निकले, उसके लिए साधना की पद्धति थी। ऐसा अभ्यास करो तो परिवर्तन आयेगा। आज पुनः इस सचाई को जीने की जरूरत है। ऐसा होने पर ही आंतरिक परिवर्तन की साधना के प्रति आकर्षण बढ़ेगा।

प्रश्न—सर्जन और विसर्जन के संदर्भ में महावीर, गांधी, मार्क्स और केनिज के विचार क्या हैं? विसर्जन को किस रूप में लेना चाहिए?

उत्तर—महावीर का सारा चिंतन विसर्जन पर चलता है। अर्जन की कोई पद्धति महावीर नहीं बतलाते। वे विसर्जन से अपनी बात शुरू करते हैं। अर्जन तो मनुष्य की प्रकृति है, आवश्यकता है, विवशता है, वह तो मनुष्य करेगा ही, किन्तु अर्जन के बाद विसर्जन कैसे करना है, महावीर यहां से अपनी बात शुरू करते हैं। गांधी जी आध्यात्मिक के साथ राजनीतिक व्यक्तित्व भी थे। वे विसर्जन की बात करते हैं ट्रस्टीशिप के रूप में और अर्जन की बात करते हैं सर्वोदयी व्यवस्था के रूप में। उनके ये दोनों रूप हैं। जो मार्क्स का चिंतन है वह सारा विसर्जन का है। अर्जन वहां है ही नहीं। सारी संपदा राज्य की है। अर्जन की कोई बात ही नहीं है। इस अर्थ में महावीर के साथ उनकी बड़ी समानता दिखाई देती है। केनिज की दृष्टि में विसर्जन की कोई बात नहीं है, केवल. . . अर्जन और अर्जन ही उनका सूत्र रहा। अर्जन को इतना बढ़ाओ, जहां कोई सीमा ही न हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम विसर्जन को सहयोग के रूप में लें। अर्जन हो, फिर उसी के अनुपात में विसर्जन हो।

प्रश्न—आर्थिक विकास की योजना के अभाव में क्या कोई नैतिक आन्दोलन हमारे देश में सफल हो सकता है?

उत्तर—यद्यपि नैतिकता शुद्ध आध्यात्मिक प्रश्न है फिर भी इसे सामाजिक परिस्थितियों, आर्थिक व्यवस्थाओं से कभी अलग नहीं किया जा सकता। जहां आर्थिक विकास होता है, वहां अनैतिकता नहीं होती, ऐसा नहीं है, फिर भी आर्थिक अभाव की स्थिति में अनैतिकता पनपने का अधिक अवकाश रहता है, अधिक संभावनाएं रहती हैं। गरीब आदमी अधिक अनैतिक हो सकता है। हम मूल कारण को बदलना चाहते हैं, उसके साथ-साथ निमित्तों को बदलने की बात को गौण नहीं कर सकते। दोनों बातें साथ चलें। आर्थिक व्यवस्था सुधरे और साथ-साथ नैतिक विकास हो तो दोनों में बहुत अच्छा संतुलन बन सकता है और स्थिति ठीक हो सकती है। इसलिए यह अपेक्षा है कि राजतंत्र और धर्म-तंत्र दोनों में योग होना चाहिए, दोनों में समन्वय होना चाहिए। आज कठिनाई यही है कि दोनों में समन्वय नहीं है। राजतन्त्र को क्षमता प्राप्त है आर्थिक व्यवस्था को सुधारने की, किन्तु वह आर्थिक व्यवस्था सुधारने पर भी नैतिकता का विकास कर सके, ऐसी क्षमता उसके पास नहीं है। उस तंत्र में यह अर्हता भी नहीं है कि उसके द्वारा नैतिकता का विकास किया जा सके। धर्म-तंत्र के पास नैतिकता के विकास की क्षमता है, किन्तु उसके पास आर्थिक व्यवस्था को सुधारने की शक्ति नहीं है। इसलिए दोनों में अधूरापन है। जो राजतंत्र व्यवस्था को बदल सकता है, उसके पास दण्ड की शक्ति है। जो हृदय को बदल सकता है, आत्मानुशासन विकसित कर सकता है, उसके पास दण्ड की शक्ति नहीं है। इसलिए नैतिकता का काम सर्वमान्य हो सके, यह नहीं कहा जा सकता और दण्डशक्ति का काम बाध्यता से मान्य होने पर भी वह हृदय को बदल सके, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। मुझे लगता है कि इस समस्या का सरल समाधान यही हो सकता है कि राज्य-शासन और धर्म-शासन—दोनों में समन्वय साधा जाए। समन्वय की अपेक्षा दोनों अनुभव कर सकें तो एक ओर आर्थिक व्यवस्था के सुधार की प्रक्रिया चले और दूसरी ओर आर्थिक विकास के साथ-साथ आने वाली जो विकृतियां हैं, अर्थ के अभाव में आने वाली जो विकृतियां हैं, उन विकृतियों की ओर जनता का ध्यान बराबर आकर्षित किया जाता रहे। अगर ऐसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समन्वय होता है तो समस्या का समाधान हो सकता है अन्यथा यह प्रश्न बना ही रहेगा।

प्रश्न—परिग्रह पर सबसे अधिक बल देने वाले जैन लोग धनाढ्य कहे जाते हैं। अपरिग्रह में से संग्रह का धर्म कैसे प्राप्त हो जाता है?

उत्तर—प्रकाश में से अंधकार कैसे निकलता है, यह प्रश्न जब सामने आता है तो फिर सोचने के लिए कुछ शेष नहीं रह जाता। प्रकाश और अंधकार में कोई सम्बन्ध ही नहीं है। किन्तु कभी-कभी भ्रान्ति हो जाती है और भ्रान्तिवश यह प्रश्न भी पूछ लिया जाता है।

अपरिग्रह में से परिग्रह कभी नहीं निकलता। जैन धर्म अपरिग्रह-प्रधान भी है, अहिंसा-प्रधान भी है, अनेकान्त-प्रधान भी है, सब कुछ है, वह तो सिद्धान्त है। अनेकान्त एक सिद्धान्त है। अपरिग्रह एक सिद्धान्त है। अहिंसा एक सिद्धान्त है। सिद्धान्त होना एक बात है, उसका पालन होना दूसरी बात है।

सिद्धान्त अपनी उच्च भूमिका में प्रतिष्ठित होता है। उस तक पहुंचने के लिए कितनी लम्बी यात्रा करनी होती है। यह भी हम जानते हैं। एक व्यक्ति अभी चला। चल सकता है, पहुंच सकता है। इसी क्षण चला और इसी क्षण वह मंजिल तक पहुंच जाएगा, यह मान लेना एक बहुत बड़ी भ्रान्ति है। आज कोई धर्म का आचरण शुरू करता है, जैन बनता है और जैन बनते ही वह अपरिग्रह तक पहुंच जाएगा, यह तो बहुत आश्चर्य की बात है। अगर ऐसा हो, चुटकी में ही सारा सध जाए, जैन बनते ही अपरिग्रही बन जाए, तब तो धर्म की यात्रा इतनी छोटी है, साधना की यात्रा इतनी छोटी है कि जब व्यक्ति चाहे, तब साधना का सपना देखे और सिद्धि तक पहुंच जाए। कुछ करने की जरूरत ही नहीं। मुझे आश्चर्य है कि यह भ्रम से पलता है और कैसे चलता है?

जैन समाज एक सिद्धान्त को मानकर चलता है कि अपरिग्रह उनका एक आदर्श है और लक्ष्य है। यहां तक उन्हें पहुंचना है। एक मुनि अपरिग्रही होता है, सब कुछ छोड़ देता है। किन्तु समाज के लिए तो अपरिग्रह एक सिद्धान्त है, उसके लिए कोई मंजिल नहीं है। समाज अपरिग्रह के आदर्श को सामने रखकर इच्छा-परिमाण का अणुव्रत स्वीकार करता है। वह इच्छा पर थोड़ा-थोड़ा नियमन शुरू करता है। जो मुक्त इच्छा है, उसे कम किया जाए और... कम किया जाए... और कम किया जाए तो वह इच्छा-परिमाण की दिशा में प्रस्थान करता है। उस दिशा में गति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होती है और गति होते-होते जो लोग अंत तक पहुंच जाते हैं, फिर वे अपरिग्रह तक भी पहुंच सकते हैं। किन्तु पूरा जैन समाज अपरिग्रह तक पहुंच जाएगा, इसका अर्थ तो यह हो गया है कि सारा समाज मुनि बन जाएगा, संन्यासी बन जाएगा।

भगवान् महावीर ने मुनि के लिए अपरिग्रह का विधान किया है, गृहस्थ के लिए उन्होंने अपरिग्रह जैसे शब्द का प्रयोग नहीं किया। उन्होंने इच्छा-परिमाण की बात कही। श्रावक को इच्छा-परिमाण करना चाहिए। जो अनन्त इच्छा है, उसकी कोई न कोई सीमा करनी चाहिए।

सीमा के लिए उन्होंने दो बातें बतलायीं। पहली बात—अर्जन के साधन अशुद्ध नहीं होने चाहिए, अप्रामाणिक नहीं होने चाहिए। महावीर की पूरी आचार-संहिता है गृहस्थ के लिए। उसमें अप्रामाणिकता के जितने व्यवहार हैं, उन सबका वर्जन किया है। मिलावट, असली वस्तु दिखा कर नकली वस्तु दे देना, धोखाधड़ी करना, धरोहर हड़पना आदि-आदि अप्रामाणिकता के जितने सूत्र हैं, साधन हैं, वे सब वर्जित हैं।

दूसरी बात है—अर्जित धन का उपयोग अपने विलास के लिए न किया जाए। व्यक्तिगत संयम किया जाए।

ये दोनों बातें होती हैं तो फिर कितना ही कमाए, इस पर कोई नियंत्रण नहीं होता। एक व्यक्ति शुद्ध साधन के द्वारा कमाता है। हो सकता है कि लाख रुपया भी मिल जाए, करोड़ रुपया भी मिल जाए। कमा लेने पर उसका उपयोग वह अपने लिए नहीं करता, अपने लिए पूरा संयम वर्तता है। जैसा आनन्द श्रावक का जीवन था। करोड़ों की संपदा, करोड़ों का व्यापार किन्तु अपने लिए बहुत संयमी। इतना सीधा-सादा जीवन कि जो एक सामान्य आदमी भी नहीं रख पाता।

ये दो शर्तें हैं गृहस्थ के लिए अपरिग्रह की प्रारम्भिक भूमिका में।ये दोनों महत्त्वपूर्ण हैं। जैन समाज इन दोनों को स्वीकार करे तो एक बहुत बड़ी भ्रान्ति मिट सकती है।

पर मुझे लगता है कि कोई भी समाज धर्म का अनुयायी होता है, धर्म का सहयात्री नहीं होता। प्रत्येक धर्म की यही स्थिति है। लोग धर्म के पीछे चलते हैं, धर्म के साथ नहीं चलते। अब उन अनुयायियों से यह अपेक्षा रखना कि अपरिग्रह का सिद्धान्त फलित हो, यह मुझे संभव नहीं लगता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—मांसाहार का निषेध न करने वाले मोहम्मद साहब ब्याज को हराम बताते हैं और अहिंसा में विश्वास करने वाले जैन लोग ब्याज का धंधा करते हैं। ऐसा क्यों?

उत्तर—ब्याज के विषय में जैन साहित्य में दोनों प्रकार की बातें मिलती हैं। जैन श्रावक ब्याज का व्यवसाय करते थे, ऐसा भी मिलता है और ब्याज को महाहिंसा मानने वाले व्यक्ति भी मिलते हैं। आचार्य जिनसेन ने ब्याज को महाहिंसा का आरम्भ बतलाया है और उसको श्रावक के लिए सर्वथा त्याज्य बतलाया है। दोनों प्रकार की बातें मिलती हैं। ब्याज एक उलझा हुआ प्रश्न है। इसके दो पहलू हैं—एक सहयोग का पहलू है, दूसरा शोषण का पहलू है। जैसे असमर्थ लोगों को सम्पत्ति न मिले तो बहुत बड़ी कठिनाई होती है। एक उपाय था कि असमर्थ लोगों को सम्पत्ति उपलब्ध करायी जाए और बदले में थोड़ा-बहुत ले लिया जाए। इस प्रेरणा से लोग दूसरों को संपत्ति देते और असमर्थ लोग अपना काम चलाते। यही प्रारम्भिक प्रेरणा ब्याज की रही होगी। यह सहयोग का पहलू है। उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु प्रवृत्ति का जब विकास होता है, तब प्रारम्भिक प्रेरणा बदल जाती है और नयी-नयी प्रेरणा जाग जाती है। सहयोग की प्रेरणा समाप्त हो गयी और स्वार्थ की प्रेरणा बलवान् बन गयी। ब्याज देते-देते इतना शोषण शुरू हो गया कि उस बेचारे असमर्थ की असमर्थता का दुरुपयोग होने लग गया। विवशता का महान् दुरुपयोग हुआ। इस दृष्टि से ब्याज निन्दनीय बन गया।

मोहम्मद साहब ने ब्याज का निषेध किया, उस भूमिका में उन्होंने बिल्कुल ठीक किया। क्योंकि उस काल में, मध्य युग में, व्यापार सहयोग की प्रेरणा को भुला चुका था। ब्याज का सारा धंधा शोषण पर प्रतिष्ठित हो गया था। उस स्थिति को उन्होंने देखा और उसका निषेध किया। आज भी बैंकिंग का धंधा चलता है, वह पूरा व्यवसाय एक ब्याज का ही धंधा है। वह सामुदायिक है, इसलिए शोषण वाली बात नहीं है। परिष्कृत रूप है। इसलिए उस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। जो लोग ब्याज का निषेध करने वाले हैं, वे भी उसका उपयोग करते हैं।

इन दोनों दृष्टियों से जब मैं सोचता हूं तो मुझे लगता है कि ब्याज सर्वथा परिहार्य ही है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता और सर्वथा वांछनीय है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। यदि पद्धति का परिष्कार हो, सहयोग की प्रेरणा को पुनः कोई जगा सके तो इसकी उपयोगिता को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके साथ में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो शोषण की बात जुड़ गयी है, वह चलती रहे तो ब्याज की वर्जनीयता को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

हमने देखा है, जहां इतनी विवशता और वर्जना हो जाती है कि बहुत ही गहरा शोषण होता है। बाध्य होकर उन्हें सारा चुकाना भी पड़ता है। यह स्थिति बिल्कुल अवांछनीय है। हमें दोनों पहलुओं से विचार कर इस पर चिन्तन प्रस्तुत करना चाहिए और वर्तमान समस्या के संदर्भ में इस प्रश्न को उजागर करना चाहिए कि ब्याज के साथ जो वैयक्तिक स्वार्थ और शोषण जुड़ा है, वह ब्याज से निकल जाए। अगर यह निकल जाता है, केवल सहयोग जैसा सूत्र-संबंध रहता है, जैसा कि आज बैंकिंग में हो रहा है तो मुझे लगता है कि इसे सर्वथा त्याज्य मानने जैसी बात भी व्यवहार की भूमिका पर नहीं आती। शायद इसीलिए भगवान् महावीर ने जहां अप्रामाणिकता के सारे स्रोतों का निषेध किया, वहां ब्याज का कोई उल्लेख नहीं किया। ऐसा लगता है कि उस समय यह पहलू इतना स्पष्ट नहीं था और केवल सहयोग के आधार पर ही सारा काम चलता था। मध्यकाल की परिस्थिति ने इस प्रश्न को यह रूप दिया और उस दृष्टि से मोहम्मद साहब के कार्य को बहुत औचित्यपूर्ण माना जा सकता है। उन्होंने एक शोषणपूर्ण कार्य के प्रति चेतना जगायी। जैन समाज के लिए पूर्वकालीन प्रश्न है, मध्यकालीन प्रश्न है और आज का प्रश्न है। आज के युग के संदर्भ में जैन समाज के सामने प्रश्न यही है कि उसकी उपयोगिता को समाप्त करने की दिशा में नहीं किन्तु उसके साथ जो शोषण जुड़ गया है, उस शोषण को समाप्त करने की दिशा में कोई कदम उठे।

प्रश्न—अहिंसा से अपरिग्रह फलित होता है या अपरिग्रह से अहिंसा फलित होती है?

उत्तर—अहिंसा परमो धर्मः यह घोष धर्म का महान् घोष माना जाता है। इसमें कोई सचाई नहीं है, यह मैं कैसे कहूं, पर मैं इस सचाई को उलट कर देखता हूं। **'अपरिग्रहः परमो धर्मः'** यह पहली सचाई है और **अहिंसा परमो धर्मः** यह इसके बाद होने वाली सचाई है। यह सर्वथा मनोवैज्ञानिक सत्य है कि मनुष्य हिंसा के लिए परिग्रह का संचय नहीं करता, किन्तु परिग्रह की सुरक्षा के लिए हिंसा करता है। जैसे-जैसे अपरिग्रह का विकास होता है, वैसे-वैसे अहिंसा का विकास होता है। परिग्रह का केन्द्र-बिन्दु मनुष्य का अपना शरीर होता है। वहीं से परिग्रह की चेतना फैलती है। धार्मिक व्यक्ति धर्म की साधना को कायोत्सर्ग या देहाध्यासमुक्ति से प्रारम्भ करता है। शरीर का ममत्व जैसे-जैसे कम होता है, वैसे-वैसे परिग्रह की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूर्च्छा कम होती जाती है। शरीर की मूर्च्छा त्यागने वाला ही अल्पवस्त्र या अवस्त्र हो सकता है।

मनुष्य चेतनावान् प्राणी है। चेतना यांत्रिक नहीं होती, इसलिए सब मनुष्य समान नहीं होते। उनमें रुचि, विचार, चिन्तन और संस्कार की भिन्नता होती है, इसलिए अचेतन जगत् की भांति चेतन जगत् के लिए कोई सार्वभौम नियम नहीं बनाया जा सकता। अपरिग्रह-प्रधान-धर्म को मानने वाले सभी अपरिग्रही हो जाते हैं—इस संभावना में सचाई नहीं लगती। अपरिग्रह सिद्धान्त को मानकर चलने वालों में से कुछ लोग अपरिग्रही निकल सकते हैं, किन्तु सब के सब अपरिग्रही हो जाएं—यह संभव नहीं है। हमारा चिन्तन इसलिए उलझता है कि हम धर्म के अनुयायी और धार्मिक को एक ही तुला पर तोलने लगते हैं। धर्म का अनुयायी वह होता है, जो धर्म को अच्छा मानकर चलता है, किन्तु उसका आचरण करने में सक्षम नहीं होता। धार्मिक वह होता है, जो धर्म के सिद्धान्तों को अच्छा भी मानता है और उसका आचरण करने में सक्षम भी होता है। जैन धर्म के अनुयायी सभी अपरिग्रही होंगे, ऐसी कल्पना अतिकल्पना होगी।

लोग धर्म की प्रभावना करने वाली प्रवृत्तियों में रस ले सकते हैं, धर्म के आचरण में उतना रस नहीं ले सकते। वे धर्म की व्यावहारिक भूमिका पर कार्य कर सकते हैं, किन्तु धर्म की आत्मा का स्पर्श नहीं कर सकते। यह दो ध्रुवों की दूरी मनुष्य की आंतरिक क्षमता से उत्पन्न दूरी है। इसके बीच में सिद्धान्त का सूत्र जुड़ा हुआ है, इसलिए अनुयायी वर्ग भी कुछ-कुछ संयम का अभ्यास करता है, पर वह व्रती जीवन नहीं जी पाता। वास्तविकता को हम अस्वीकार न करें। धर्म के अनुयायियों, धर्म के प्रति सम्यग् दृष्टि रखने वालों और धार्मिक या व्रती जीवन जीने वालों से एक प्रकार की अपेक्षा न रखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर और अर्थशास्त्र

महावीर का अर्थशास्त्र प्रवचनमाला पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी के सान्निध्य में सम्पन्न हुई। प्रवचन माला का समापन अणुव्रत अनुशास्ता के मंगल उद्बोधन से होता। उनके उद्बोधन एक नई दृष्टि लिए हुए थे। प्रस्तुत अध्याय में अणुव्रत अनुशास्ता के उन्हीं महत्त्वपूर्ण विचारों का आकलन है।

आज जो कहा जा रहा है, वह पचास वर्ष पहले कहा जाता तो लोग सुनने को तैयार नहीं होते। इसलिए कि आज लोग इतनी दुविधा में फंस गए हैं कि कहीं शान्ति नहीं है। वे खोज रहे हैं कि कहीं से शान्ति का रास्ता मिले। कवि ने कहा है—

नीकी पै फीकी लगे, बिना समय की बात।
जैसे योद्धा युद्ध में, नहिं सिंगार सुहात॥

योद्धा के लिए सिंगार की बात अच्छी है, किन्तु वह समय पर होनी चाहिए। युद्ध में शस्त्र धारण करके जाते समय श्रृंगार-प्रसाधन करना समयोचित बात नहीं है। इसलिए आज की हमारी यह बात सामयिक है और निश्चय ही सबको अच्छी लगेगी।

संगति कैसे हो?

प्रश्न होता है—महावीर और अर्थशास्त्र—इसकी संगति कैसे बैठेगी? महावीर वीतराग हैं, तीर्थंकर हैं, राग से विमुक्त हैं, वे अर्थशास्त्र की बात कैसे करेंगे? हम सिद्ध महावीर की बात नहीं कर रहे हैं, साधक महावीर की बात कर रहे हैं। सिद्ध महावीर अर्थ की बात नहीं करेंगे। महावीर तीर्थंकर हैं तो भी वे साधना में हैं। उस समय महावीर हर बात कहने के अधिकारी हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा—

एतच्च सर्वं सावद्यमपि लोकानुकम्पया।
स्वामी प्रवर्तयामास, जानन् कर्तव्यमात्मनः॥

तीर्थंकर ऋषभदेव ने युगानुकूल मार्गदर्शन दिया—कृषि कैसे करनी चाहिए, तलवार हाथ में कैसे लेनी चाहिए, श्रम कैसे करना चाहिए, उपार्जन कैसे करना चाहिए,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवाह कैसे करना चाहिए—ये सारी बातें बतलायीं। वे जानते थे कि ये बातें सावद्य हैं, किन्तु उन्होंने इन सबको सावद्य मानते हुए भी अपना कर्तव्य मानकर लोकानुकम्पा से इनका प्रतिपादन किया। महावीर ने भी ऐसा ही किया। उन्होंने कहा—सबके सब साधु नहीं हैं, साधक नहीं हैं, संसारी हैं। उनका पथदर्शन अगर हम नहीं करेंगे तो कौन करेगा?

महावीर ने गृहस्थ के लिए महाव्रत की बात नहीं कही, अणुव्रत की बात कही। त्याग की बात नहीं कही, सीमित भोग की बात कही। यह उनकी अनुकंपा है। इस दृष्टि से महावीर का अर्थशास्त्र—इस कथन में संगति है।

शाश्वत के प्रवक्ता

वैज्ञानिक भी चिंतक हैं और महावीर भी चिंतक हैं। कभी कभी यह देखकर आश्चर्य होता है कि वैज्ञानिक कहां से कहां पहुंच जाते हैं। आश्चर्यचकित कर देने वाली हैं वैज्ञानिकों की खोजें। अन्तर एक ही है—वैज्ञानिकों का चिंतन बहुत गहरा होकर भी तात्कालिक है, त्रैकालिक नहीं है। महावीर का चिंतन त्रैकालिक है। वैज्ञानिकों का चिंतन त्रैकालिक होता तो फ्रिज की बात न आती। जब चाहे वस्तुओं को ठण्डा या गर्म रखने वाली मशीन का आविष्कार नहीं होता। आज इनकी व्यर्थता सामने आ गई है। क्योंकि ये तात्कालिक हैं, त्रैकालिक नहीं हैं। जितनी भी चीजें वैज्ञानिकों ने आविष्कार की हैं, मुझे लगता है कि वे तात्कालिक हैं। कुछ काल के पश्चात् उनकी निरर्थकृत हमारे सामने आ जाती है।

महावीर ने हजारों वर्ष पहले जो बात कही, वह आज भी हमारे बड़े काम की है, आगे भी रहेगी। उन्होंने यंत्रों के आधार पर अन्वेषण नहीं किया, आत्मा के आधार पर किया, अनुभूति के आधार पर किया। यंत्र भौतिक है, अनुभूति आत्मिक है। आत्मिक अनुभूति त्रैकालिक होगी, तात्कालिक नहीं होगी।

कहा गया—इच्छाओं का नियंत्रण करें। इस बात को लोग कभी बकवास मानते थे। कल्पना करना छोड़ दो, यह कहना कितनी मूर्खता की बात है। इससे तो देश का विकास ही अवरुद्ध हो जायेगा। लोग कहते—आप अपने श्रावकों को प्रेरणा नहीं देते, ये सब ऐसे ही रह जाएंगे। आज चारों ओर से आवाज उठ रही है कि सीमा होनी चाहिए।

अध्यात्म और भौतिकवाद का समन्वय

महावीर ने अध्यात्म और भौतिकवाद का समन्वय किया। प्राचीनकाल में एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न उठता था—**'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या'** ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है। क्या उस जगत् को मिथ्या मानें, जो सामने दीख रहा है? जो चीज सामने दिखाई दे रही है, वह मिथ्या कैसे हुई? महावीर ने कहा—भौतिकवाद सत्य है और आत्मा भी सत्य है। क्या पुद्गल सत्य नहीं है? जीवन सत्य है तो क्या मृत्यु सत्य नहीं है? दोनों सत्य हैं।

महावीर ने जो कुछ कहा, अनुभूति के आधार पर कहा। उन्होंने कहा—एक साथ किसी को आध्यात्मिक बनाना चाहोगे, असफल हो जाओगे। उसे इस दिशा में धीरे-धीरे आगे बढ़ाओ। उसकी भूख को बढ़ाओ, ज्ञान-पिपासा को तेज करो, अपने आप काम हो जायेगा। वस्तुतः आज के भटके हुए मानव को रास्ता दिखाने की बड़ी अपेक्षा है। आज सारा संसार आर्थिक बन रहा है। अर्थ ही प्रधान है, इस मनोवृत्ति को कैसे बदलें? इस दिशा में निरन्तर प्रयत्न होना चाहिए।

विकास की अवधारणा

अर्थ-विकास भी एक विकास है। विकास की अपनी-अपनी अवधारणा है। हम कोई नियम किसी पर थोप नहीं सकते। कहा जा रहा है—कोई व्यक्ति दरिद्र नहीं रहना चाहिए, किन्तु धनकुबेर क्यों बने?

एक दरिद्र व्यक्ति किसी राजा के पास गया। जाकर बोला—'राजन्! मैं सिद्ध हो गया हूं। मैं सबको देखता हूं किन्तु मेरी ओर कोई नहीं देखता।

रे दारिद्र्य! नमस्तुभ्यं, सिद्धोहं त्वत्प्रसादतः।
सर्वानहं च पश्यामि, मां न पश्यति कश्चन ॥

दरिद्रता तुझे नमस्कार है। तेरी कृपा से मैं सिद्ध हो गया हूं। मैं सबको देखता हूं, किन्तु मुझे कोई नहीं देखता।

ऐसी दरिद्रता हम नहीं चाहते और दरिद्र आदमी धार्मिक भी शायद नहीं बन सकेगा। खाने को रोटी नहीं है, तो धर्म क्या करेगा? हमारा चिंतन न तो आर्थिक दरिद्रता का है और न धन को बढ़ाने का है।

आवश्यकता पूर्ति सबकी होनी चाहिए, किन्तु जहां औरों के स्वार्थ की बलि हो, ऐसी आर्थिक सम्पन्नता कभी भी काम्य नहीं होगी और न होनी चाहिए। समय-समय की अवधारणाएं भिन्न-भिन्न होती हैं और भिन्न-भिन्न अवधारणाएं सामयिक होती हैं। तात्कालिक बात का आकर्षण ज्यादा होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ किसलिए

अर्थ आखिर है किसके लिए? वह सुखी जीवन के लिए ही तो है। वह स्वयं को, परिवार, समाज और राष्ट्र को सुखी बनाए। चिन्तन तो यही है, किन्तु वह ज्यादा दुःखी बनाता जा रहा है। ऐसी स्थिति में फिर से एक बार विचार करना पड़ेगा। हम अर्थशास्त्र के विद्यार्थी नहीं हैं, धर्मशास्त्र के विद्यार्थी हैं। किन्तु हर शास्त्र दूसरे शास्त्र से जुड़ा हुआ है, इसलिए किसी अन्य विषय पर विचार करते समय अर्थ के विषय में भी हम विचार करते हैं।

मात्र अर्थ से कोई सुखी नहीं बन सकता। भगवान् महावीर के पास दो व्यक्ति आए। एक सम्राट् श्रेणिक और दूसरा श्रावक पूनिया। सम्राट् श्रेणिक उस समय का सबसे बड़ा व्यक्ति था। उसकी सम्पत्ति का कोई पार न था। पूनिया श्रावक पूनी कात कर जीवन निर्वाह करने वाला व्यक्ति था। महावीर से पूछा गया—आपकी दृष्टि में महत्त्व सम्राट् श्रेणिक का है या पूनिया का? महावीर ने कहा—'दोनों का। सम्राट् श्रेणिक के कारण हजारों-हजारों व्यक्ति मेरे पास आए। दूसरी ओर पूनिया जितना संतोषी और सुखी है उतना सुख और संतोष सम्राट् स्वप्न में भी प्राप्त नहीं कर सकता।'

चिन्तन बदले

हम चाहते हैं— मनुष्य का जीवन पूनिया की तरह शान्त, संतुष्ट और सुखी हो।

अर्थशास्त्र की हमारी अवधारणा यह है कि अर्थ के बिना आदमी जी नहीं सकता। अतिशय अर्थार्जन भी आदमी को सुख से जीने नहीं देगा। इस संदर्भ में अल्पेच्छा, अल्पारम्भ, अल्प परिग्रह का सिद्धान्त ही सही दृष्टि देने वाला है। गांधीजी इसका प्रयोग अक्सर किया करते थे। वे प्रयोक्ता थे, मात्र उपदेष्टा नहीं थे। अमेरिकी पत्रकार लुई फिशर गांधी जी के पास आए। सेवाग्राम में कुछ दिन रहने की इच्छा व्यक्त की। गांधीजी की स्वीकृति मिल गयी। वहां की गर्मी में रह कर लुई फिशर की हालत खराब हो गयी। गांधीजी उसकी शक्ल देखकर समझ गए, बोले— तुम्हें एयरकंडीशन की जरूरत है, अभी लाता हूं। पानी का एक बड़ा टब मंगाया, उसके पास दो स्टूल रख दिये। लुई फिशर स्टूल पर बैठ गया, उसने अनुभव किया—गर्मी शान्त हो गयी है। वह प्रसन्न हो गया।

चिंतन समयोचित होना चाहिए। हम मानते हैं, हर व्यक्ति अर्थ से परे नहीं हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकता किन्तु अर्थ के बारे में आज जो चिंतन चल रहा है, उसे बदलना होगा तभी वह सबके लिए सार्थक बन सकेगा।

हिंसा और अर्थ

एक प्रश्न है—अहिंसा और अर्थ—इनका आपस में क्या संबंध है? जहां अर्थ है, वहां हिंसा अनिवार्य है। कहा भी गया है—**'अर्थ अनर्थ का मूल है।'** जितनी हिंसा होती है, अर्थ के लिए होती है। हिंसा के लिए अर्थ नहीं होता। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के युद्ध के समय हम दिल्ली में ही थे। उस समय दिल्ली विश्वविद्यालय के कुछ प्रोफेसर आए। उन्होंने कहा—'आचार्यश्री! आपके सामने तो बड़ी परेशानी खड़ी हो गयी होगी। इस समय भारत-पाक युद्ध चल रहा है और आप हिंसा को मानते नहीं हैं।' मैंने कहा—'आप क्या कह रहे हैं? जैन राष्ट्र से अलग हैं क्या? जो राष्ट्र की स्थिति है वही जैनों की भी है। जैन लोग क्या सबके सब संन्यासी हैं? क्या गृहस्थ नहीं हैं? क्या उन्हें सुरक्षा की जरूरत नहीं हैं? अर्थ है तो हिंसा सामने रहेगी। जैन सम्राट् हुए हैं, जैन सेनापति हुए हैं। उन्होंने अनेक युद्ध लड़े हैं।' मेरी बात से उन्हें संतोष मिला।

जहां अर्थ है, वहां हिंसा और अशान्ति रहेगी। महावीर ने सीमा और संयम करने का निर्देश दिया। इससे ऐसा ब्रेक लग जाता है कि फिर इसके बढ़ने की संभावना नहीं रहती। पचास वर्ष पहले यह बात समझ में नहीं आती थी, आज आ रही है क्योंकि हिंसा और अशान्ति बहुत बढ़ गई है। इसके लिए सबसे बड़ा उपचार है सीमाकरण।

प्रश्न उपयोगिता का

यह दृष्टिकोण नहीं होना चाहिए—जो उपयोगी है, हम उसे ही स्वीकार करें। उपयोगी को स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु सभी उपयोगी बातों को स्वीकार कर लिया जाये, यह ठीक नहीं है। जो आज उपयोगी है, वह कल नहीं भी हो सकता है। उसका तात्कालिक उपयोग है, त्रैकालिक नहीं है। हम तात्कालिक चीजों पर ज्यादा ध्यान देते हैं, त्रैकालिक पर ध्यान नहीं देते हैं। जितने भी अर्थशास्त्री हुए हैं, उन्होंने तात्कालिक पर ज्यादा ध्यान दिया। महावीर ने त्रैकालिक पर ज्यादा ध्यान दिया। संभव है कि वह बात, जो आज ठीक नहीं है, आगे चलकर ठीक लगे, इसलिए हम त्रैकालिकता की बात को न भुलाएं, उसका मूल्यांकन करें।

युद्ध अर्थ का

प्राचीनकाल में तीन बातों को लेकर युद्ध होते थे—जर, जोरू और जमीन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज स्थितियां बदल गई हैं। आज युद्ध केवल अर्थ का हो रहा है, व्यापार का हो रहा है। आज के अर्थशास्त्र पर हम अंकुश नहीं लगाएंगे तो चिरकाल तक शान्ति नहीं पाएंगे। शान्ति की जितनी बातें आज हो रही हैं, उतनी और कब होती थीं? चारों ओर शान्ति के स्वर सुनाई दे रहे हैं किन्तु इसके लिए जो प्रयत्न होने चाहिए नहीं हो रहे हैं। इसके लिए उत्पादन का सीमाकरण करना पड़ेगा, आयात-निर्यात का सीमाकरण करना पड़ेगा। उन वस्तुओं का उत्पादन बन्द करना ही पड़ेगा, जो देश को गर्त में ले जा रही हैं। मैं समझ नहीं पाता हूं कि ऐसी चीजों का उत्पादन क्यों किया जा रहा है? यह एक असंदिग्ध सचाई है—इन्हें रोके बिना शान्ति-व्यवस्था कायम नहीं हो सकती। गलत कार्य को रोके बिना सही काम नहीं हो सकता।

तीन प्रश्न

तीन प्रश्न हमारे सामने हैं :

- शान्ति अपेक्षित है या नहीं?
- स्वतन्त्रता प्रिय है या नहीं?
- पवित्रता और आनन्द चाहिए या नहीं?

यह कोई नहीं कहेगा कि ये तीनों हमें नहीं चाहिए। अगर चाहिए तो फिर साधन जुटाने पड़ेंगे। संयम के बिना शान्ति नहीं मिलेगी। संतोष के बिना स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी। पवित्रता के लिए साधन की शुद्धि करनी पड़ेगी। आनन्द चाहिए तो स्वस्थ रहना पड़ेगा। स्वस्थ केवल शारीरिक रूप से ही नहीं, मानसिक और भावात्मक रूप से भी रहना होगा।

महावीर ने अपने अर्थशास्त्र की सीमा में कहा—कोई व्यक्ति चोरी न करे। चोर को चोरी करने में सहयोग भी न करे। चोर की चुराई हुई वस्तु नहीं खरीदे। उस समय इतनी बुराइयां नहीं थीं, किन्तु त्रिकालज्ञ महावीर पांच हजार साल बाद की बुराइयों को अपनी आंखों से देख रहे थे। इसीलिए महावीर ने भविष्य में भी आदमी के सुखी रहने के गुर बताए। आज अगर सुख, शान्ति की अपेक्षा है तो उनके बताए सूत्रों का मूल्य आंकें।

सीमाकरण का विवेक

दो प्रकार के समाज हमारे सामने हैं—अनियंत्रित समाज और नियंत्रित समाज। अब निर्णय आपको करना है कि आप कैसा समाज चाहते हैं? इस संदर्भ में किसी से कुछ मत पूछिए, अपने मन से पूछिए। अगर आप दुःखी समाज चाहते हैं तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनियंत्रित समाज तैयार है। सुखी और शान्त समाज चाहते हैं तो नियंत्रित समाज की अपेक्षा है।

प्राचीनकाल में मनुष्य के लिए समाज शब्द का प्रयोग हुआ है और पशुओं के लिए समज शब्द का व्यवहार हुआ है— **समजस्तु पशूनां स्यात् समाजस्त्वन्य देहिनाम्।'** हम चिंतनशील मनुष्य हैं किन्तु यह कहना गलत नहीं है कि मनुष्य जितना अनियंत्रित है, उतना शायद कोई नहीं है। प्राचीन ऋषियों ने कहा—'अग्नि में कितना ही ईंधन डालो, वह तृप्त नहीं होगी। समुद्र में कितनी ही नदियां आकर गिरे, वह भरेगा नहीं। तब पदार्थों से हमारी आकांक्षा कैसे भर जायेगी?

समस्या यह है कि हम दूसरों को सीमा में देखना चाहते हैं, किन्तु अपनी सीमा नहीं करते। यह समय और विवेक का तकाजा है कि व्यक्ति स्वयं अपनी सीमा करे।

पर्यावरण और अर्थशास्त्र

पर्यावरण की समस्या सामने न आती तो मनुष्य कुछ चिंतन के लिए अवकाश ही नहीं निकालता, अंधी दौड़ में कभी रुकता ही नहीं। अब यह सोचना पड़ रहा है कि यह प्रदूषण न रुका तो मरने के सिवा और कोई चारा नहीं है। इसीलिए समस्या का आना भी एक दृष्टि से ठीक ही होता है।

आज पर्यावरण की समस्या गंभीर रूप धारण कर चुकी है। इसके बारे में अभी हजारों वर्ष तक कुछ सोचना भी न पड़ता। आगमों में हम पढ़ते थे—छठा आरा आएगा तो ऐसा हो जाएगा, पर चिन्ता किसी को नहीं थी। आज मनुष्य को साफ दीख रहा है—छठा आरा बिल्कुल सामने खड़ा है। पर्यावरण की समस्या सामने है और मनुष्य अर्थशास्त्र में उलझा हुआ है। वह निरन्तर सम्पन्नता के सपने ले रहा है, जबकि विपन्नता पर्यावरण के रूप में उसके ठीक सामने खड़ी है।

सम्यक् दृष्टिकोण

हमारा दृष्टिकोण एकांगी है और यह एकांगी दृष्टिकोण ही सारी समस्याओं का मूल है। अनेकान्त की दृष्टि से सोचते तो समस्याओं में इतना उभार न आता। मैं जो सोचता हूं, वह सच है और तुम जो सोचते हो, वह सच हो सकता है, ऐसा दृष्टिकोण जब तक नहीं बनेगा, हमारी समस्याओं का समाधान नहीं होगा।

महावीर ने कहा—'सब धर्मों का मूल है सम्यक् दर्शन और सब पापों का मूल है मिथ्या दर्शन। हिंसा, असत्य, अब्रह्मचर्य, क्रोध, अहंकार—ये पाप हैं, किन्तु सबसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बड़ा पाप है मिथ्यादर्शन। हिंसा करने वाला स्वयं डूबता है, औरों को डुबोए या नहीं, किन्तु मिथ्या दृष्टिकोण वाला व्यक्ति लाखों को डुबो देता है। इसलिए इस दृष्टिकोण को मिटाओ। आयारो में कहा गया है—'सम्मत्तदंसी न करेइ पावं—सम्यक्त्वदर्शी पाप नहीं कर सकता। व्यक्ति का एकांगी दृष्टिकोण ही पर्यावरण की समस्या का मुख्य हेतु है।

विलासिता और क्रूरता

लोक आकाश पर टिका है, आकाश पर वायु और वायु पर जल टिका हुआ है, जल पर पृथ्वी टिकी हुई है और पृथ्वी पर प्राणी स्थित हैं। इतनी गहरी परतें हैं इसकी। इन परतों के नुकसान का कोई सवाल ही नहीं था किन्तु मनुष्य इतना निर्मम और क्रूर बन गया कि वह मूल को ही खोदने लगा। धरती को ही नहीं, वह आकाश को खोदने का भी प्रयत्न करने लगा। इतना धन मनुष्य के पास था कि सात पीढ़ी खाती तो भी खत्म न होता। ऐसे घर हमने आंखों से देखे हैं, जिनकी दीवारों में भी सोना भरा पड़ा था, किन्तु वे बर्बाद हो गए। सब अपने ही हाथों से उनकी संतानों ने खो दिया। हम विपन्नता के उपासक नहीं हैं, दरिद्रता के उपासक नहीं हैं किन्तु एकांगी सम्पन्नता के उपासक भी नहीं हैं। सम्पन्नता विलासिता बढ़ाती है और विपन्नता क्रूरता बढ़ाती है। विलासिता और क्रूरता दोनों पाप हैं। हम मध्यम मार्ग के उपासक हैं। गांधी बहुत उच्च शिक्षाप्राप्त थे। वे बैरिस्टर थे, सब कुछ हासिल कर सकते थे। किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे पक्के समाजवादी थे। कहते थे समाज को जब तक न मिले, अकेले क्यों खाऊं। एक बच्चे ने उनसे कहा—'आप यह छोटी-सी लंगोटी क्यों पहनते हैं। मेरी मां आपके लिए अच्छी-सी पोशाक तैयार कर सकती है।' गांधी बोले—'एक पोशाक से काम नहीं चलेगा, तीस करोड़ पोशाक हो, तब मैं पहनूं।'

तादात्म्य की अनुभूति

अपनी बात बताऊं। मैंने संतों का एक ग्रुप लोकोपकार के लिए सौराष्ट्र भेजा किन्तु वहां वातावरण कुछ ऐसा बना, उन्हें स्थान और रोटी मिलनी भी मुश्किल हो गयी। मुझे सूचना मिली, वहां संतों को आहार-पानी मिलने में भी कठिनाई हो रही है। मन में चिंतन आया, उन्हें वहां भेजकर मैंने अच्छा नहीं किया और उसी समय संकल्प किया कि जब तक उन्हें पूरा आहार नहीं मिलता, मैं भी पूरा आहार नहीं करूंगा। यह संकल्प मैंने किसी के सामने व्यक्त नहीं किया। एक महीने बाद सूचना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आई—संतों को अब आहार-पानी की पूरी सुविधा मिल रही है। वह सूचना मिलने पर मैंने अपना संकल्प पूरा किया।

जहां व्यक्ति दूसरे के सुख-दुःख का अनुभव करता है, वहां स्वार्थ की वृत्ति व्यापक बनती है। 'मैं अकेला नहीं हूं' यह भावना जितनी प्रखर होगी, उतना ही पर्यावरण की समस्या को समाधान मिलेगा।

गरीब कौन?

एक प्रश्न है—गरीबी की परिभाषा क्या है? किसको गरीब कहें? अमीर कौन है और गरीब कौन है? यह जानने की अपनी दृष्टि है। एक संस्कृत कवि ने लिखा—नीचे की ओर देखो, सब दरिद्र लगेंगे। ऊपर की ओर देखो, स्वयं की दरिद्रता झलकेगी।

अधोधो पश्यतः कस्य, महिमा नो गरीयसी।
उपर्युपरि पश्यन्तः, सर्वमेव दरिद्रति॥

अपने से ऊपर वाले को देखो तो लगेगा उससे ज्यादा वह गरीब है। लाख वाला करोड़ वाले के सामने गरीब है, करोड़ वाला अरब वाले के सामने गरीब है, अरबपति खरबपति के सामने गरीब है। ठीक ही कहा है ऊंचे से ऊंचे को देखो तो नीचे वाले दरिद्र हैं। आप अपने नीचे देखें तो लगेगा हम सबसे ऊंचे हैं। एक के हाथ में एक है और दूसरे के हाथ में सौ है। इसकी मुकम्मल परिभाषा नहीं की जा सकती कि कौन अमीर है और कौन गरीब है।

मुझसे पूछा जाए तो मैं कहूंगा—गरीब वह है, जिसका मन गरीब है, जिसकी वृत्तियां गरीब हैं। एक मजदूर को देखें, वह दो रोटी खाता है, पानी पीता है और मस्ती की नींद सो जाता है। दूसरी तरफ दस लाख की मोटर में बैठ कर चलने वाला मालिक, एयरकंडीशन बंगले में सोता है, फिर भी नींद नहीं आती। अन्तर क्या है? हम उद्योगपति डालमियाजी की कोठी में रहे, हमने देखा—खाते समय भी हाथ से फोन कान में लगाए रहते थे। मन में विचार आया—जीवन इतना व्यस्त और अशान्त, फिर यह धन किस काम आयेगा? उन्हें दरिद्र मानूं या सम्पन्न?

प्रश्न बेरोजगारी का

एक प्रश्न है बेरोजगारी का। बेरोजगारी कहां से आई है? इसका कारण है हमारी शिक्षा पद्धति। मैं स्पष्ट कहता हूं, भारत की बेरोजगारी उसकी शिक्षा पद्धति की देन है। पहले हर वर्ग अपने-अपने काम में मस्त था। किसान का बेटा खेती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता, कुम्हार का बेटा मिट्टी के बर्तन बनाता, लुहार का बेटा लोहे का काम सीखता। सब अपने-अपने काम में लगे थे। शिक्षा का स्तर बढ़ा। उसके साथ-साथ सामाजिक परिवेश में भी बदलाव आने लगा। पढ़-लिख कर लोग अपने पुश्तैनी धंधे से दूर होते गए। फिर परम्परागत धंधे में जुड़ने में संकोच होने लगा। गांव शहर की ओर भागने लगा। यह सब वर्तमान शिक्षा की देन है।

सुरक्षा और सहयोग

एक प्रश्न है सुरक्षा और सहयोग का। सुरक्षा कौन किसकी करता है? इस संसार में कोई किसी की सुरक्षा नहीं कर सकता। सबकी अपनी-अपनी स्वार्थ की सुरक्षा है। बिना स्वार्थ बाप बेटे की सुरक्षा नहीं करता, बेटा बाप की सेवा नहीं करता। यह स्वार्थवृत्ति कब मिटे? इस संसार में जब तक काम, क्रोध, लोभ, मोह रहेगा, ये बातें रहेंगी। अरबों की सम्पत्ति जिनके पास में है मरने की अवस्था में आने पर गोद लिया बेटा कहता है—बुला तो रहे हो, क्या सेठ जी सचमुच मरने की स्थिति में हैं? मरणासन्न स्थिति में हों तो आऊं, वरना मुझे फुर्सत नहीं है। मरणासन्न सेठजी के पास कोई मक्खियां उड़ाने वाला भी नहीं है। कौन किसकी सुरक्षा करता है? धन्य है हमारे गुरुदेवों को, जिन्होंने हमें सुरक्षा के प्रति निश्चिन्त बनाया है। छोटे से छोटे और निकम्मे साधु की सेवा की जाती है। क्यों की जाती है? गुरु को प्रसन्न करने के लिए नहीं, निर्जरा के लिए।

दुष्काल की स्थिति में जब पशुधन समाप्त होने लगता है तब चारों ओर से पुकार उठती है उनकी सुरक्षा और चारे-पानी के प्रबन्ध के लिए। किसलिए? पशुओं के लिए नहीं, अपने लिए। मर जाएंगे तो दूध-दही, मक्खन कहां से मिलेगा? खेती किससे होगी? सारा स्वार्थ का मामला है। अकाल-दुष्काल तो कभी-कभी पड़ता है। मनुष्यों का दुष्काल तो हर समय चल रहा है। प्रतिदिन लाखों-करोड़ों लोग रोटी-पानी के लिए जूझ रहे हैं। इसके लिए वस्तुतः कोई चिन्ता नहीं हो रही है, कृत्रिम चिन्ता अवश्य हो रही है।

समाधान सूत्र

इस समस्या के दो ही समाधान हैं। पहला समाधान यह है, स्वयं अपने विचारों से गरीब और दरिद्र न बने। दूसरा समाधान यह है, इस बात की शिक्षा दी जाये कि अकेले आगे बढ़ने की कोशिश करोगे तो इस स्वार्थवृत्ति से तुम्हें बहुत नुकसान होगा इसलिए ऐसा मत करो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दक्षिण यात्रा में हमने देखा—समूचे दक्षिण में जैन धर्म का बड़ा प्रभाव है। उत्तर भारत में महाजन व्यापारी ही जैन हैं जबकि दक्षिण में हर कौम जैन है। इसका कारण क्या है? खोज की तो पता चला—वहां के जैन लोगों ने बड़ी दूरदृष्टि से काम लिया। उन्होंने यह संकल्प किया—जो जैन होगा, उसे शिक्षा, चिकित्सा और रोजगार बराबर मिलेगा। कोई भूखा नहीं मरेगा, मकान के बिना नहीं सोयेगा। चिकित्सा के अभाव में नहीं मरेगा। इसका परिणाम यह हुआ कि पूरा दक्षिण जैन धर्म के प्रति आकृष्ट हुआ। ईसाई लोग यही तो करते हैं। वे अभावग्रस्त लोगों की पूरी मदद करते हैं। फलस्वरूप उन्होंने अपनी संख्या बढ़ा ली। दूसरी ओर हिन्दू यह आपत्ति करते हैं कि धर्मान्तरण किया जा रहा है किन्तु केवल ऐसा करने से क्या होगा? जीवन की प्राथमिक आवश्यकताएं भी जिनकी पूरी न हो रही हों, रोटी और कपड़े के भी जो मोहताज हों, वे मदद के लिए किसी न किसी का दामन तो थामेंगे ही। अभी एक फाउण्डेशन बना है, उसका उद्देश्य यही है—हम हर आदमी को शिक्षा, चिकित्सा और आवास देने का प्रयत्न करेंगे। यह काम आभार प्राप्त करने की दृष्टि से नहीं, सेवाभावना और साधर्मिक वात्सल्य की दृष्टि से होगा। जैन शासन में एक शब्द है साधर्मिकता। इस शब्द को अगर हम महत्व दें तो बहुत बड़ा काम हो सकता है, बेरोजगारी और गरीबी मिटाने में बहुत सहायता मिल सकती है।

अणुव्रत ग्राम योजना

एक कल्पना की जा रही है अणुव्रत ग्राम योजना की। ऐसे अणुव्रत ग्राम तैयार किये जाएं, जहां का कोई भी व्यक्ति बेरोजगार न रहे, भूखा न रहे, कोर्ट-कचहरी में न जाये। सबके सब प्रामाणिक और ईमानदारी का जीवन जीयें। यह योजना थोड़ी-सी भी सफल हो गई तो यह न केवल धर्म की सफलता होगी, समाज की भी बड़ी भारी सफलता होगी। धर्म के लोगों ने कहा— गरीबों को रोटी खिलाओ, पुण्य मिलेगा। गरीबों को भोजन करा कर पुण्य अर्जित करने की इस कामना पर आचार्य भिक्षु ने कड़ा प्रहार करते हुए कहा—किसी को भिखारी मान कर उसे रोटी खिलाना पाप है। उसे भाई मान कर, कर्त्तव्य मानकर, सहायता करने की दृष्टि से यह काम करो। वस्तुतः गरीबी कोई बहुत बड़ी समस्या नहीं है। विवेक से काम लिया जाये और **वसुधैव कुटुम्बकम्** की भावना से काम किया जाये तो इस पर काबू पाया जा सकता है।

पहले जीएं

हमने न महावीर को देखा, न गांधी को देखा, न मार्क्स और केनिज को देखा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसे देखा न हो, उसके बारे में विवेचन केवल वैचारिक दृष्टि से, साहित्य की दृष्टि से किया जा सकता है। हम सबसे अधिक परिचित और निकट महावीर के हैं क्योंकि उनका जीवन जीते हैं, उनका दर्शन पढ़ते हैं, उनकी बात करते हैं। वे नहीं हैं, किन्तु उनका जीवन-दर्शन हमारे सामने है। महावीर केवल द्रष्टा और दर्शक नहीं थे। वे जो बोलते थे, उसको पहले जीते थे। यह उनकी विशेषता है। आयारो पढ़ें, उनका पूरा जीवन-दर्शन मिलेगा। हम महावीर के अनुयायी हैं इसलिए हमारा प्रयास रहता है कि हम जो कुछ बोलें, उसे पहले जीयें।

महावीर की कोटि में हम किसी दूसरे को कैसे लाएं? अगर न लाएंतो पक्षपात हो जायेगा। महावीर ने यह कभी नहीं कहा—वे ही सब कुछ हैं, वें जो कुछ कह रहे हैं, वही सत्य है। उन्होंने यही कहा—'**अप्पणा सच्चमेसेज्जा**—स्वयं सत्य खोजो। महावीर का खोजा हुआ सत्य अब बासी है, पुराना है। स्वयं सत्य खोजो, यह कौन कहता है? यह महावीर कहते हैं। इससे एक दृष्टि मिलती है। उनके प्रति आकृष्ट होने की अपेक्षा हम उनके विचारों से आकृष्ट हैं। उन्होंने कहा—तुम मेरे शब्दों के प्रति आकृष्ट मत बनो। सोचो, विचारो और ठीक लगे तब स्वीकार करो।

केवल श्रद्धा के कारण हम महावीर को नहीं मानते, द्वेष के कारण किसी के प्रति हमारी अरुचि नहीं है। हमने आप्तत्व की परीक्षा की है। हमें महावीर में आप्तत्व लगा, इसलिए हमारा आकर्षण महावीर के प्रति है। उन्होंने कहा— महावीर नाम के व्यक्ति के प्रति तुम आकृष्ट मत बनो। भूल जाओ कि महावीर नाम का कोई व्यक्ति है। वे व्यक्ति पूजा के समर्थक नहीं थे।

इसी दृष्टि से हमें मार्क्स, केनिज और गांधी को भी देखें। गांधी में भी कम महापुरुषत्व नहीं मिलता है। कभी-कभी मन में आता है—क्या एक गृहस्थ व्यक्ति ऐसा हो सकता है? ऐसा व्यक्ति जो कहता है, वही करता है और जो करता है, वही कहता है। दुःख-सुख को कोई महत्व ही नहीं देता। विशिष्ट व्यक्तित्व था वह। हम बड़े सम्मान के साथ उनके सिद्धान्तों के प्रति अपनी सहमति व्यक्त करते हैं।

मार्क्स का अवदान

मार्क्स ने भी बहुत कार्य किया है। मार्क्स न होते तो संसार की अंधश्रद्धा टूटती नहीं। गरीब अपने कर्मों से गरीबी भोग रहा है, उसमें कोई क्या कर सकता है? उसके भाग्य में ही ऐसा लिखा हुआ है—इस मान्यता को तोड़ना कोई छोटी-मोटी बात नहीं थी। महावीर ने ऐसा नहीं कहा था पर उनके अनुगामी जैन लोग भी ऐसा मानने लगे थे कि सब कर्मों का खेल है, इसमें कोई कुछ नहीं कर सकता। मार्क्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने इस मान्यता को तोड़ा—कर्मों की गति मानकर क्लीब मत बनो। कर्म हम कर रहे हैं, हमको कर्म नहीं कर रहा है। कर्मों के करने वाले हम हैं तो तोड़ने वाले भी हम ही हैं। मानना पड़ेगा कि ऐसा विचार देकर मार्क्स ने मानव जाति का बड़ा कल्याण किया, शोषित और गरीब का उद्धार कर दिया।

हम कमियों को छोड़ दें, गुणग्राही बनें, यह हमारा दृष्टिकोण है। मार्क्स की विचारणा में एक कमी रह गयी, जिससे वह असफल हो गया। वह कमी यह रही—उसके विचारों के साथ अध्यात्म नहीं जुड़ा। अहिंसा और अध्यात्म जुड़ जाते तो मार्क्स युग का महान् विचारक सिद्ध होता किन्तु उसने अहिंसा को भुला दिया। जैसे-तैसे लक्ष्य को प्राप्त करो, यह चिन्ता हावी हो गयी और इसीलिए साम्यवाद का प्रयोग असफल हो गया।

सुख और सम्पन्नता

केनिज के विचार को भी सर्वथा असत्य नहीं कहा जा सकता। उसने सुविधा और सम्पन्नता का दर्शन किया किन्तु इस तथ्य को भुला दिया कि साधन और सुविधा के मिल जाने पर भी सुख मिल जाये, यह जरूरी नहीं है। बड़े सम्पन्न व्यक्तियों को दुःख भोगते हुए हमने देखा है। सबके सब सम्पन्न हो जाएं तो भी विपन्नता रहेगी, वह मिटेगी नहीं।

स्वर्ग लोक से उतर कर इन्द्र और इन्द्राणी एक छोटे से ग्राम में आए। गांव बड़ा दरिद्र था। वहां के निवासी फटेहाल और गरीब थे। इन्द्राणी को दया आ गयी। उन्होंने इन्द्र से कहा—महाराज! आप इन गरीबों का संकट काटें। बड़ा दुःख भोग रहे हैं। इन्द्र बोले—'तुम समझती नहीं। कोई सुखी बनाने से नहीं बनता। इन्द्राणी ने अपनी जिद नहीं छोड़ी स्त्री। हठ के आगे आखिर इन्द्र को भी झुकना पड़ा। इन्द्र ने गांव के घर और गलियां सोने-चांदी से भर दीं। सवेरे लोग सोकर उठे, धन का चारों ओर अम्बार लगा देखा। लोगों ने अकूत धन अपने पास जमा कर लिया। कुछ ही देर में सब सम्पन्न बन चुके थे।

कुछ दिनों बाद इन्द्र और इन्द्राणी पुनः वहां आए। गांव को सम्पन्न देखा। इन्द्राणी बहुत प्रसन्न हुई। किन्तु गांव के लोगों को इन्द्राणी ने दुःखी पाया। इन्द्र ने पूछा—दुःखी क्यों लग रहे हो? एक व्यक्ति ने बड़ी निराशा से जवाब दिया—न जाने किसकी कुदृष्टि पड़ गयी इस गांव पर। यहां सबके पास सब कुछ है। सब मालिक हो गए, कोई नौकर नहीं मिलता। अपना धन हम किसे दिखाएं? यहां तो सबके यहां रत्नों का भण्डार है। हम इतना धन पाकर सुखी नहीं, दुःखी हैं। इन्द्र ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्राणी की ओर देखा। बात इन्द्राणी की समझ में आ चुकी थी।

यह बड़ी मार्मिक कहानी है। सम्पन्नता से किसी को सुख प्राप्त नहीं हो सकता। सुख अलग चीज है, सम्पन्नता अलग चीज है। हम इस बात को समझ लें तो अर्थशास्त्र का सारा क्रम बदल जायेगा।

महावीर, मार्क्स, केनिज और गांधी

महावीर, मार्क्स, केनिज और गांधी—ये सब दूरदर्शी थे, अपनी दृष्टि से दूर की बात सोचते थे। दूरदर्शी होना भी एक बहुत बड़ी उपलब्धि है, बहुत बड़ा गुण है। उपनिषद् में कहा है—'दीर्घं पश्यतु मा ह्रस्वं, परं पश्यतु मापरम्।' कल क्या होगा? यह क्या देखें। देखना है तो सौ वर्ष बाद क्या होगा, यह देखने की कोशिश करो। बड़ी बात को देखो। इस दृष्टि से जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे सचमुच दूरदर्शी थे। वे आज भी हमें प्रेरणा देते हैं कि तुम भी दूरदर्शी बनो।

इस संदर्भ में हम इस बात को भूल जाते हैं—जब तक कषाय, नो-कषाय विद्यमान हैं, दूरदर्शिता काम नहीं करेगी। यह भी दूरदृष्टि से देखना चाहिए कि मनुष्य की स्थितियां कैसे बदलें? मनुष्य के कषाय कैसे बदले जा सकते हैं? उसकी मनोवृत्तियां कैसे बदली जा सकती हैं? मनुष्य को ठीक कैसे किया जा सकता है?

महावीर ने इस पर खूब चिंतन किया। गांधी ने भी किया। महावीर ने चिंतन किया तो हुआ क्यों नहीं? हुआ हो या न हुआ हो, पर चिंतन तो उन्होंने किया। उन्होंने कारगर उपचार बताया, पर औषधि का सेवन कराना तो उनके हाथों की बात नहीं थी। महावीर ने कहा—अर्थ तुम्हारे लिए जरूरी है, किन्तु उसका त्याग भी जरूरी है। हिंसा तुम्हारे लिए अनिवार्य है, किन्तु अहिंसा भी उतनी ही अनिवार्य है। परिग्रह आवश्यक है तो अपरिग्रह भी जरूरी है। ये बातें उन्होंने बतलाई। इस दृष्टि से कहा जा सकता है—जितने भी महापुरुष हुए हैं, उन्होंने अपनी-अपनी दृष्टि से युग की समस्याओं को समझा है और उनका समाधान दिया है।

कषाय का अल्पीकरण करें

कषाय को कम करना साधुओं का ही काम नहीं है। प्राचीन धारणा थी योगी योग-साधना जंगल में करें, शहरों में उनका क्या काम है। हमने इस दृष्टि को महत्व दिया—योग-साधना जंगल में ही नहीं, शहर में भी आवश्यक है, भीड़ में भी आवश्यक है, यहां तक कि युद्ध में भी आवश्यक है। योग-साधना सबके लिए सब समय में आवश्यक है। राष्ट्र नेता, समाजनेता, संस्थाओं के नेता इनके लिए तो कषायों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम करना निहायत जरूरी है। इसीलिए कहा गया कि आचार्य बनाने से पहले खूब बारीकी से निरीक्षण-परीक्षण कर लेना चाहिए। निर्धारित कसौटियों पर खरा उतरे तो बनाओ, अन्यथा नहीं। अर्थशास्त्र की दृष्टि से सोचें तो नियन्ता व्यक्ति अल्पकषायी तो होना ही चाहिए।

आदमी अच्छा बने

एक बात निश्चित जान लें—जब तक मनुष्य नहीं बदलेगा, तब तक कुछ नहीं होगा। किसी के हाथ में नहीं है मनुष्य को बदलना। ऋतु को बदल सकते हैं, प्रकृति को बदल सकते हैं, किन्तु मनुष्य को बदलना सहज नहीं है। मनुष्य को बदलना है तो बदलने के प्रक्रिया अपनानी होगी, दीर्घकाल तक प्रयोग और प्रयत्न करने पड़ेंगे। बदलना असम्भव है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता किन्तु वह सहज और सरल भी नहीं है।

बर्नार्ड शा ने एक जनसभा में इस्लाम की बहुत तारीफ की। लोग मंत्रमुग्ध होकर सुनते रहे। भाषण की समाप्ति के बाद एक व्यक्ति बोला,— लगता है, आप इस्लाम धर्म स्वीकार करने जा रहे है। बर्नार्ड शा बोले—स्वीकार तो जरूर कर लेता, किन्तु क्या करूं, मुसलमान अच्छा नहीं है।

मैं भी कहता हूं—सारे धर्म अच्छे हैं, किन्तु उसका अनुयायी मनुष्य अच्छा नहीं है। प्रयत्न हमारा यही है कि किसी तरह मनुष्य अच्छा बन जाये। अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान और ये भाषणमालाएं—सब इसी दिशा में किये जा रहे प्रयत्न हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. महावीर वाणी : मूल स्रोत

- तए णं से आणंदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए तप्पढमयाए थूलयं पाणाइवायं पच्चक्खाइ आवज्जीवाए।
- तयाणंतरं च णं इच्छापरिमाणं करेमाणे—

(१) हिरण्ण-सुवण्णविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ चउहिं हिरण्णकोडीहिं निहाणपउत्ताहिं, चउहिं वड्ढिपउत्ताहिं, चउहिं पवित्थरपउत्ताहिं, अवसेसं सव्वं हिरण्ण-सुवण्णविहिं पच्चक्खाइ।

(२) तयाणंतरं च णं चउप्पयविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ चउहिं वएहिं दसगोसाहस्सिएणं वएणं, अवसेसं सव्वं चउप्पयविहिं पच्चक्खाइ।

(३) तयाणंतरं च णं खेत्त-वत्थुविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ पंचहिं हलसएहिं नियत्तणसतिएणं हलेणं, अवसेसं सव्वं खेत्त-वत्थुविहिं पच्चक्खाइ।

(४) तयाणंतरं च णं सगडविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ सगडसएहिं दिसायत्तिएहिं, पंचहिं सगडसएहिं, संवहणिएहिं, अवसेसं सव्वं सगडविहिं पच्चक्खाइ।

(५) तयाणंतरं च णं वाहणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ चउहिं वाहणेहिं दिसायत्तिएहिं, च चउहिं वाहणेहिं सवंहणिएहिं, अवसेसं सव्वं वाहणविहिं पच्चक्खाइ॥

- तयाणंतरं च णं उवभोग-परिभोगविहिं पच्चक्खायमाणे—

(१) उल्लणियाविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ 'एगाह गंधकासाईए', अवसेसं सव्वं उल्लणियाविहिं पच्चक्खाइ।

(२) तयाणंतरं च णं दंतवणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगेणं अल्लमट्ठीमहुएणं, अवसेसं सव्वं दंतवणविहिं पच्चक्खाइ।

(३) तयाणंतरं च णं फलविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगेणं खीरामलएणं, अवसेसं सव्वं फलविहिं पच्चक्खाइ।

(४) तयाणंतरं च णं अब्भंगणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ सयपागसहस्स-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पागेहिं तेल्लेहिं, अवसेसं सव्वं अब्भंगणविहिं पच्चक्खाइ ।

(५) तयाणंतरं च णं उव्वट्टणाविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगेणं सुरभिणा गंधट्टएणं, अवसेसं सव्वं उव्वट्टणाविहिं पच्चक्खाइ ।

(६) तयाणंतरं च णं मज्जणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ अट्ठहिं उट्टिएहिं 'उदगस्स घडेहिं, अवसेसं सव्वं मज्जणविहिं पच्चक्खाइ ।

(७) तयाणंतरं च णं वत्थविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगेणं खोमजुयलेणं, अवसेसं सव्वं वत्थविहिं पच्चक्खाइ ।

(८) तयाणंतरं च णं विलेवणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ अगरुकुंकुमचंदणमादिएहिं, अवसेसं सव्वं विलेवणविहिं पच्चक्खाइ ।

(९) तयाणंतरं च णं पुप्फविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगेणं सुद्धपउमेणं मालइकुसुमदामेण वा, अवसेसं सव्वं पुप्फविहिं पच्चक्खाइ ।

(१०) तयाणंतरं च णं आभरणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ मट्ठकण्णेज्जएहिं नाममुद्दाए य, अवसेसं सव्वं आभरणविहिं पच्चक्खाइ ।

(११) तयाणंतरं च णं धूवणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ अगकू-तुरुक्क-धूवमादिएहिं, अवसेसं सव्वं धूवणविहिं पच्चक्खाइ ।

(१२) तयाणंतरं च णं भोयणविहिपरिमाणं करेमाणे—

(क) पेज्ज-विहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगाए कट्ठपेज्जाए, अवसेसं सव्वं पेज्जविहिं पच्चक्खाइ ।

(ख) तयाणंतरं च णं भक्खविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगेहिं घयपुण्णेहिं खंडखज्जएहिं वा, अवसेसं सव्वं भक्खविहिं पच्चक्खाइ ।

(ग) तयाणंतरं च णं ओदणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ कलमसालिओदणेणं, अवसेसं सव्वं ओदणविहिं पच्चक्खाइ ।

(घ) तयाणंतरं च सूवविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ कलायसूवेण वा मुग्गसूवेण वा माससूवेण वा अवसेसं सव्वं सूवविहिं पच्चक्खाइ ।

(ङ) तयाणंतरं च णं घयविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ सारदिएणं गोघयमंडेणं, अवसेसं सव्वं घयविहिं पच्चक्खाइ ।

(च) तयाणंतरं च णं सागविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ वत्थुसाएण वा तंबुसाएण वा सुत्थियसाएण वा मंडुक्किकयसाएण वा, अवसेसं सव्वं सागविहिं पच्चक्खाइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(छ) तयाणंतरं च णं माहुरयविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगेणं पालंकामाहुरएणं, अवसेसं सव्वं माहुरयविहिं पच्चक्खाइ ।

(ज) तयाणंतरं च णं तेमणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ सेहंबदालियंबेहिं, अवसेसं सव्वं तेमणविहिं पच्चक्खाइ ।

(झ) तयाणंतरं च णं पाणियविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगेणं अंतलिक्खोदएणं, अवसेसं सव्वं पाणियविहिं पच्चक्खाइ ।

(ञ) तयाणंतरं च णं मुहवासविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ पंचसोगंधिएणं तंबोलेणं, अवसेसं सव्वे मुहवासविहिं पच्चक्खाइ ।

● तयाणंतरं च णं चउव्विहं अणट्ठदंड पच्चक्खाइ, तं जहा—१. अवज्झाणाचरितं २. पमायाचरितं ३. हिंसप्पयाणं ४. पावकम्मोवदेसे ।

● तयाणंतरं च णं थूलयस्स पाणाइवायवेरमणस्स समणोवासएणं पंच अतियारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

१. बंधे
२. वहे
३. छविच्छेदे
४. अतिभारे
५. भत्तपाणवोच्छेदे ।

● तयाणंतरं च णं थूलयस्य अदिण्णादाणवेरमणस्स समणोवसएणं पंच अतियारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

१. तेणाहडे
२. तक्करप्पओगे
३. विरुद्धरज्जातिक्कमे
४. कूडतुल-कूडमाणे
५. तप्पडिरूवगववहारे ।

● तयाणंतरं च णं इच्छापरिमाणस्स समणोवासएणं पंच अतियारा जाणियंव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

१. खेत्तवत्थुप[illegible]णातिक्कमे
२. हिरण्णसुवण्णपमाणातिक्कमे
३. धणधण्णपमाणातिक्कमे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. दुपयचउप्पयपमाणातिक्कमे
५. कुवियपमाणातिक्कमे ।

- तयाणंतरं च णं दिसिवसस्स समणोवासएणं पंच अतियारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

१. उड्ढदिसिपमाणातिक्कमे
२. अहोदिसिपमाणातिक्कमे
३. तिरियदिसिपमाणातिक्कमे
४. खेत्तवुड्ढी
५. सतिअंतरद्धा ।

कम्मओ णं समणोवासएणं पण्णरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं, न समायरि यव्वाइं, तं जहा-१. इंगालकम्मे २. वणकम्मे ३. साडीकम्मे ४. भाडीकम्मे ५. फोडीकम्मे ६. दंतवाणिज्जे ७. लक्खवाणिज्जे ८. रसवाणिज्जे ९. विसवाणिज्जे १०. केसवाणिज्जे, ११. जंतपीलणकम्मे १२. निल्लंछणकम्मे १३. दवग्गिदावणया १४. सरदहतलागपरिसोसणया १५. असतीजणपोसणया ।[1]

- इह खलु पाईणं वा पडीणं वा उदीणं वा दाहितां संतेगइया मणुस्सा भवंति, तं जहा-महिच्छा महारंभा महापरिग्गहा अधम्मिया अधम्मणुया अधम्मिट्ठा अधम्मक्खाई अधम्मपायजीविणो अधम्मपलज्जणा अधम्मसीलसमुदाचारा अधम्मेण चेव वितिं कप्पेमाणा विहरंति, हण छिंद भिंद विगत्तगा लोहियपाणी चंडा रुद्दा साहस्सिया उक्कंचण-वंचण-मायाणियडिकूड-कवड-साइ-संपओगबहुला दुस्सीला दुव्वया दुप्पडियाणंदा असाहू सव्वाओ पाणाइवायाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए, सव्वाओ मुसावायाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए, सव्वाओ मेहुणाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए, सव्वाओ परिग्गहाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए ।

इह खलु पाईणं वा पडीणं वा उदीणं वा जाहिमं वा संतेगइया मणुस्सा भवंति, तं जहा-अणारंभा अपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुगा धम्मिट्ठा धम्मक्खाई धम्मप्पलोई धम्मपलज्जणा धम्मसमुदायारा धम्मेणं चेव वितिं कप्पेमाणा विहरंति, सुसीला सुव्वया सुप्पडियाणंदा सुसाहू सव्वाओ पाणाइवायाओ पडिविरया जावज्जीवाए, सव्वाओ

१. उवासगदसाओ १/ २४, २९-३०, ३२, ३४, ३६, ३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुसावाओ पडिविरया जावज्जीवाए, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ पडिविरया जावज्जीवाए, सव्वायाओ मेहुणाओ पडिविरया जावज्जीवाए, सव्वाओ परिग्गहाओ पडिविरया जावज्जीवाए।

इह खलु पाईणं वा पडीणं वा उदीणं दाहिणं वा संतेगइया मणुसा भवंति, तं जग—अप्पिच्छा अप्पपरिग्गहा धम्मिहा धम्माणुया धम्मिट्ठा धम्मक्खाई धम्मप्पलोई धम्मपलज्जणा धम्मसमुदायारा धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति सुसीला सुव्वया सप्पडियाणंदा सुसाहू, एगच्चाओ पाणाइवायाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अप्पडिविरया। एगच्चाओ मुसावायाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अप्पडिविरया। एगच्चाओ अदिण्णादाणाओ पडिविरया जावजीवाए, एगच्चाओ अप्पडिविरया। एगच्चाओ मेहुणाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अप्पडिविरया एगच्चाओ परिग्गहाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अप्पडिविरया।[१]

१. सूर्यगडो - २/२-५८,६३,७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. व्रत-दीक्षा

श्रावक की पहली भूमिका है सम्यक्त्व दीक्षा। सम्यक्त्व की पुष्टि के बाद श्रावक की दूसरी भूमिका—व्रत दीक्षा स्वीकार की जाती है। व्रत-दीक्षा का अर्थ है—संयम की ओर प्रस्थान। एक गृहस्थ श्रावक पूरी तरह से संयमी नहीं हो सकता पर वह असंयम की सीमा कर सकता है। इसी दृष्टि से भगवान् महावीर ने उसके लिए बारह व्रत रूप संयम धर्म का निरूपण किया। अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत रूप बाहर व्रत एवं तेरहवां मारणान्तिक संलेखना—यही व्रत-दीक्षा है। उसका स्वरूप इस प्रकार है—

१. अहिंसा-अणुव्रत

मैं स्थूल प्राणातिपात[1] का प्रत्याख्यान करता हूं/करती हूं—

- मैं आजीवन निरपराध त्रस प्राणी की संकल्पपूर्वक हत्या न स्वयं करूंगा, न दूसरों से कराऊंगा, मन से, वचन से काया से।
- मैं विशेष रूप से मनुष्य को बलात् अनुशासित करने, आक्रमण करने, उसे पराधीन बनाने, अस्पृश्य मानने, शोषित और विस्थापित करने का परित्याग करता हूं।
- मैं इस अहिंसा अणुव्रत की सुरक्षा के लिए वध,[2] बन्धन,[3] अंग-भंग, अतिभार-आरोपण, खाद्य-पेय-विच्छेद और आगजनी जैसे क्रूर कर्मों से बचता रहूंगा।

---

१. हिंसा दो प्रकार की होती है—(१) आरम्भजा (२) संकल्पजा। अहिंसा अणुव्रत में केवल संकल्पजा हिंसा का त्याग किया जाता है। इसलिए यह स्थूल प्राणातिपात का प्रत्याख्यान है।

२. क्रूरतापूर्ण पीटना।

३. क्रूरतापूर्ण बांधना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. सत्य अणुव्रत

मैं स्थूल मृषावाद का प्रत्याख्यान करता हूं—

- वैवाहिक सम्बन्ध, पशु-विक्रय, भूमि-विक्रय, धरोहर और साक्षी जैसे व्यवहारों में असत्य न स्वयं बोलूंगा, न दूसरों से बुलवाऊंगा, मन से, वचन से, काया से।
- मैं इस सत्य की सुरक्षा के लिए किसी पर दोषारोपण, षड्यंत्र का आरोप, मर्म का प्रकाशन, गलत पथ-दर्शन और कूटलेख[1] जैसे छलनापूर्ण व्यवहारों से बचता रहूंगा।

३. अचौर्य अणुव्रत

मैं स्थूल अदत्तादान (चोरी) का प्रत्याख्यान करता हूं।

- मैं आजीवन ताला तोड़ने, जेब कतरने, सेंध मारने, डाका डालने, राहजनी करने और दूसरे के स्वामित्व का अपरहण करने जैसे क्रूर व्यवहार न स्वयं करूंगा, न दूसरों से कराऊंगा, मन से वचन से, काया से।
- मैं इस अचौर्य अणुव्रत की सुरक्षा के लिए चोरी की वस्तु लेने, राजनिषिद्ध वस्तु का आयात-निर्यात करने, असली के बदले नकली मालल बेचने, मिलावट करने, कूट तोल-माप करने और रिश्वत लेने जैसे वंचनापूर्ण व्यवहारों से बचता रहूंगा।

४. ब्रह्मचर्य अणुव्रत

मैं स्थूल मैथुन[2] का प्रत्याख्यान करता हूं—

- मैं आजीवन अपनी पत्नी/पति के अतिरिक्त शेष सब स्त्रियों-पुरुषों
- के साथ संभोग नहीं करूंगा/करूंगी।
- मैं इस ब्रह्मचर्य अणुव्रत की सुरक्षा के लिए पर स्त्री और वेश्यागमन, अप्राकृतिक मैथुन, तीव्र कामुकता और अनमेल विवाह जैसे आचरणों से बचता रहूंगा/रहूंगी।

---

१. झूठा दस्तावेज, जाली हस्ताक्षर आदि।

२. मैथुन दो प्रकार का है—सूक्ष्म स्थूल। मन, इन्द्रिय और वाणी में जो अल्पविकार उत्पन्न होता है, वह सूक्ष्म है और शरीरिक काम-चेष्टा करना स्थूल मैथुन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. अपरिग्रह अणुव्रत

- मैं स्थूल परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूं—इच्छा का परिमाण करता हूं।
- मेरे स्वामित्व में जो परिग्रह है और आगे होगा, उसकी सीमा निम्नांकित प्रकार से करता हूं, उससे अधिक परिग्रह का आजीवन परित्याग करता हूं—

१. क्षेत्र, वास्तु (घर) का परिमाण।
२. सोना, चांदी, रत्न आदि का परिमाण।
३. धन, धान्य का परिमाण।
४. पशु, पक्षी आदि का परिमाण।
५. कुप्यप्रमाण—तांबा, पीतल धातु तथा अन्य गृहसामग्री, यान, वाहन आदि का परिमाण।

- मैं संतान की सगाई, विवाह के उपलक्ष्य में रुपये आदि के लेने का ठहराव नहीं करूंगा।
- मैं अपनी परिशुद्ध (नेट) आय का कम से कम एक प्रतिशत प्रतिवर्ष विसर्जन करूंगा। यदि मेरी परिशुद्ध (नेट) वार्षिक आय पचास हजार रुपये से अधिक होगी तो कम से कम अपनी आय का तीन प्रतिशत विसर्जन करूंगा। विसर्जित राशि पर अपना किसी प्रकार का स्वामित्व नहीं रखूंगा।
- मैं अपरिग्रह अणुव्रत की सुरक्षा के लिए उक्त सीमाओं और नियमों के अतिक्रमण के बचता रहूंगा।

६. दिग् परिमाण व्रत

- मैं ऊंची, नीची, तिरछी दिशाओं में स्वीकृत सीमा से बाहर जाने व हिंसा आदि के आचरण का प्रत्याख्यान करता हूं।
- मैं दिग्व्रत की सुरक्षा के लिए निम्न निर्दिष्ट आक्रिमणों से बचता रहूंगा—

१. ऊंची, नीची, तिरछी दिशा के परिमाण का अतिक्रमण करना।
२. एक दिशा का परिमाण घटाकर दूसरी दिशा के परिमाण का अतिक्रमण करना।
३. दिशा के परिमाण की विस्मृति होना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- मैं अपने राष्ट्र से बाहर जाकर राजनीति में हस्तक्षेप और जासूसी नहीं करूंगा। स्थानीय जनता के हितों को कुचलने वाला व्यावसायिक विस्तार नहीं करूंगा और बिना टिकट या पारपत्र के यात्रा नहीं करूंगा।

७. भोगोपभोग-परिमाण व्रत

- मैं उपभोग-परिभोग विधि का प्रत्याख्यान करता हूं— निम्ननिर्दिष्ट वस्तुओं का परिमाण करता हूं—

१. उल्लणिया विधि—अंगोछे का परिमाण।
२. दन्तवन विधि—दतौन का परिमाण।
३. फल-विधि—स्नान के लिए काम में लिये जाने वाले आंवले आदि का परिमाण।
४. अभ्यंगण विधि—तेल-मर्दन का परिमाण।
५. उद्वर्तन विधि—उबटन (पिट्ठी) का परिमाण।
६. मज्जन विधि—स्नान-जल का परिमाण।
७. वस्त्र विधि—वस्त्र का परिमाण।
८. विलेपन विधि—चन्दन आदि के विलेपन का परिमाण।
९. पुष्प विधि—पुष्प या पुष्पमाला का परिमाण।
१०. आभरण विधि—आभूषण का परिमाण।
११. धूपन विधि—अगरबत्ती आदि जलाने का परिमाण।
१२. भोजन विधि—खाद्य पदार्थों का परिमाण। जैसे—

- पेय विधि—पेय द्रव्यों का परिमाण।
- भक्ष्य विधि—मिठाई एवं नमकीन आदि का परिमाण।
- ओदन विधि—चावल आदि अन्न का परिमाण।
- सूपविधि—दालों का परिमाण।
- घृतविधि—घृत, तेल आदि स्नेह का परिमाण।
- शाक विधि—पालक आदि शाक का परिमाण।
- मधुर विधि—आम आदि फलों तथा मेवों का परिमाण।
- तेमन विधि—दहीबड़े आदि का परिमाण।
- पानीय विधि—जल प्रकारों, (भौम, अंतरिक्ष) का परिमाण।
- मुखवास विधि—ताम्बूल आदि का परिमाण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. वाहन विधि—वाहन का परिमाण।
१४. शयन विधि—पलंग, बिछौने आदि का परिमाण।
१५. उपानद् विधि—जूते, चप्पल आदि का परिमाण।
१६. सचित्त विधि—सजीव द्रव्यों का परिमाण।
१७. द्रव्य विधि—खाद्य, पेय पदार्थों की संख्या का परिमाण।

- भोजन संबंधी उपभोग-परिभोग व्रत की सुरक्षा के लिए मैं इन अतिक्रमणों से बचता रहूंगा—

१. सचित्ताहार—प्रत्याख्यान के उपरान्त सचित वस्तु का आहार करना।
२. सचित्त प्रतिबद्धाहार—सचित्त संयुक्त आहार करना।
३. अपक्व धान्य का आहार करना।
४. अर्धमान धान्य का आहार करना।
५. असार फल आदि खाना।

- कर्म (व्यवसाय) की दृष्टि से पन्द्रह कर्मादान श्रमणोपासक के लिए मर्यादा के उपरान्त अनाचरणीय हैं।

१. अंगारकर्म—अग्निकाय के महाआरंभ वाला कार्य।
२. वनकर्म—जंगल को काटने का व्यवसाय।
३. शाकटकर्म—वाहन चलाने का व्यवसाय।
४. भाटककर्म—किराये का व्यवसाय।
५. स्फोटकर्म—खदान, पत्थर आदि फोड़ने का व्यापार।
६. दन्तवाणिज्य—हाथीदांत, मोती, सींग, चर्म, अस्थि आदि का व्यापार।
७. लाक्षावाणिज्य—लाख, मोम आदि का व्यापार।
८. रसवाणिज्य—घी, दूध, दही तथा मद्य, मांस आदि का व्यापार।
९. विषवाणिज्य—कच्ची धातु, संखिया, अफीम आदि विषैली वस्तु तथा अस्त्र शस्त्र आदि का व्यापार।
१०. केशवाणिज्य—चमरी गाय, घोड़ा, हाथी तथा ऊन एवं रेशम आदि का व्यापार।
११. यंत्र पीलनकर्म—ईख, तिल आदि को कोल्हू में पीलने का धंधा।
१२. निर्लांछनकर्म—बैल आदि को नपुंसक करने का धंधा।
१३. दावानलकर्म—खेत या भूमी को साफ करने के लिए आग लगाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा जंगलों में आग लगाना।

१४. सरद्रहतड़ागशोषण—झील, नदी, तालाब आदि को सुखाना।

१५. असतीजनपोषण—दास, दासी, पशु-पक्षी आदि का व्यापारार्थ पोषण करना।

८. अनर्थदण्ड विरमण व्रत

- मैं अनर्थदण्ड का प्रत्याख्यान करता हूं। इसके चार प्रकार हैं—

१. अपध्यानाचरित—आर्त, रौद्र ध्यान की वृद्धि करने वाला आचरण।

२. प्रमादाचरित—प्रमाद की वृद्धि करने वाला आचरण।

३. हिंस्रप्रदान—हिंसाकारी अस्त्र-शस्त्र देना।

४. पापकर्मोपदेश—हत्या, चोरी, डाका, द्यूत आदि का प्रशिक्षण देना। इस अनर्थदण्ड विरमण व्रत की सुरक्षा के लिए मैं निम्नलिखित अतिक्रमणों से बचता रहूंगा—

१. कन्दर्प—कामोद्दीपक क्रियाएं।

२. कौतकुच्य—कायिक चपलता।

३. मौखर्य—वाचालता।

४. संयुक्ताधिकरण—अस्त्र-शस्त्रों की सज्जा।

५. उपभोग-परिभोगातिरेक—उपभोग-परिभोग की वस्तुओं का आवश्यकता के उपरान्त संग्रह।

९. सामायिक व्रत

- व्रती के लिए प्रतिदिन कम से कम एक सामायिक करना आवश्यक है। वैसा सम्भव न हो सके तो प्रति सप्ताह कम से कम एक सामायिक अवश्य करना—एक मुहूर्त्त (४८ मिनिट) तक समता की विधिवत् साधना करना।
- सामायिक का अर्थ है सावद्य योग से विरत होना तथा निरवद्य योग में प्रवृत्त होना। इसके पांच अतिचार हैं—

१. मन दुष्प्रणिधान—मन की असत् प्रवृत्ति।

२. वचन दुष्प्रणिधान—वचन की असत् प्रवृत्ति।

३. काय दुष्प्रणिधान—काय की असत् प्रवृत्ति।

४. सामायिक की विस्मृति।

५. नियत समय से पहले सामायिक की समाप्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. देशावकाशिक व्रत

- मैंने छहों दिशाओं में जाने का जो परिमाण किया है, उसका तथा अन्य व्रतों की सीमा का प्रतिदिन या अल्पकालीन संकोच करूंगा।

११. पौषधोपवास व्रत

- मैं प्रति वर्ष कम से कम एक पौषध करूंगा। दिन-रात उपवासपूर्वक समता की विशेष साधना करूंगा। मैं पौषध व्रत की सुरक्षा के लिए निम्न निर्दिष्ट अतिक्रमणों से बचता रहूंगा—

१. स्थान, वस्त्र, बिछौने, आदि को बिना देखे या असावधानी से काम में लेना।
२. स्थान, वस्त्र, बिछौने आदि को रात्रि के समय बिना पूंजे असावधानी से पूंज कर काम में लेना।
३. भूमि को दिन में बिना देखे या असावधानी के मल-मूत्र का विसर्जन करना।
४. भूमि को रात्रि में बिना प्रमार्जन किए या असावधानी से मल-मूत्र का विसर्जन करना।
५. पौषधोपवास व्रत का विधिपूर्वक पालन न करना।

१२. यथासंविभाग व्रत

- मैं अपने प्रासुक और एषणीय भोजन, वस्त्र आदि का (यथासंभव) संविभाग देकर संयमी व्यक्तियों के संयम-जीवन में सहयोगी बनूंगा।

मै यथासंविभाग व्रत की अनुपालना के लिए निम्न निर्दिष्ट अतिक्रमणों से बचता हूंगा—

१. एषणीय वस्तु को सचित्त वस्तु के ऊपर रखना।
२. एषणीय वस्तु को सचित्त वस्तु से ढकना।
३. काल का अतिक्रमण करना।
४. अपनी वस्तु को दूसरों की बताना।
५. मत्सरभाव से दान देना।
६. अप्रासुक और अनैषणीय का दान देना, जैसे—साधु के निमित्त बनाकर, खरीदकर, समय को आगे-पीछे कर आदि तरीकों से दान देना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संलेखना

- मैं इस संलेखना व्रत की आराधना करने के लिए निम्न निर्दिष्ट अतिक्रमणों से बचता रहूंगा—

१. इहलोक सम्बन्धी सुखों की अभिलाषा।
२. परलोक सम्बन्धी सुखों की अभिलाषा।
३. जीने की अभिलाषा।
४. मरने की अभिलाषा।
५. कामभोग की अभिलाषा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. चौदह नियम

श्रावक के दैनंदिन व्यावहारिक प्रवृत्तियों के सीमाकरण का एक क्रम प्राचीन काल से चला आ रहा है, जिसमें प्रमुख रूप से चौदह बिन्दुओं का स्पर्श है। ये चौदह बिन्दु चौदह नियम की संज्ञा से अभिहित हैं—

१. सचित्त—अन्न, पानी, फल आदि सचित वस्तुओं की सीमा करना।
२. द्रव्य—खाने-पीने संबंधी वस्तुओं की सीमा करना।
३. विगय—दूध, दही, घी, तेल, गुड़, मीठा—इन छह विगय के परिभोग की सीमा करना।
४. पन्नी—जूते, मोजे, खड़ाऊ, चप्पल आदि की सीमा करना।
५. ताम्बूल—पान, सुपारी, इलायची, चूर्ण आदि मुखवास के द्रव्यों की सीमा करना।
६. वस्त्र—पहनने के वस्त्रों की सीमा करना।
७. कुसुम—फूल, इत्र व अन्य सुगंधित वस्तुओं की सीमा करना।
८. वाहन—मोटर, तेल, स्कूटर, रिक्शा आदि वाहनों की सीमा करना।
९. शयन—बिछौनों की सीमा करना।
१०. विलेपन—केसर, तेल आदि लेप करने वाले पदार्थों की सीमा करना।
११. अब्रह्मचर्य—मैथुन सेवन की सीमा करना।
१२. दिशा—छहों दिशाओं में यातायात व अन्य जो भी प्रवृत्तियां की जाती हैं, उनकी सीमा करना।
१३. स्नान—स्नान व जल की मात्रा की सीमा करना।
१४. भक्त—अशन, पान, खादिम, स्वादिम की सीमा करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. अणुव्रत आचार संहिता

१. मैं किसी भी निरपराध प्राणी का संकल्पपूर्वक वध नहीं करूंगा।

- आत्म-हत्या नहीं करूंगा।
- भ्रूण-हत्या नहीं करूंगा।

२. मैं आक्रमण नहीं करूंगा।

- आक्रामक नीति का समर्थन नहीं करूंगा।
- विश्व -शांति तथा निःशस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करूंगा।

३. मैं हिंसात्मक एवं तोड़फोड़-मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।

४. मैं मानवीय एकता में विश्वास करूंगा।

- जाति, रंग आदि के आधार पर किसी को ऊंच-नीच नहीं मानूंगा।
- अस्पृश्य नहीं मानूंगा।

५. मैं धार्मिक सहिष्णुता रखूंगा।

- साम्प्रदायिक उत्तेजना नहीं फैलाऊंगा।

६. मैं व्यवसाय और व्यवहार में प्रामाणिक रहूंगा।

- अपने लाभ के लिए दूसरे को हानि नहीं पहुंचाऊंगा।
- छलनापूर्ण व्यवहार नहीं करूंगा।

७. मैं ब्रह्मचर्य की साधना और संग्रह की सीमा का निर्धारण करूंगा।

८. मैं चुनाव के संबंध में अनैतिक आचरण नहीं करूंगा।

९. मैं सामाजिक कुरूढ़ियों को प्रश्रय नहीं दूंगा।

१०. मैं व्यसन-मुक्त जीवन जीऊंगा।

- मादक तथा नशीले पदार्थों—जैसे शराब, गांजा, चरस, हेरोइन, भांग, तम्बाकू आदि का सेवन नहीं करूंगा।

११. मैं पर्यावरण की समस्या के प्रति जागरूक रहूंगा।

- हरे-भरे वृक्ष नहीं काटूंगा।
- पानी का अपव्यय नहीं करूंगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य महाप्रज्ञ की प्रमुख कृतियां

- मन के जीते जीत
- किसने कहा मन चंचल है
- जैन योग
- चेतना का ऊर्ध्वारोहण
- आभामण्डल
- मेरी दृष्टि : मेरी सृष्टि
- एकला चलो रे
- एसो पंच णमोक्कारो
- अपने घर में
- मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता
- अर्हम
- नया मानव नया विश्व
- कर्मवाद
- महावीर की साधना का रहस्य
- घट-घट दीप जले
- मैं : मेरा मन : मेरी शान्ति
- भिक्षु विचार-दर्शन
- समस्या को देखना सीखें
- धर्म के सूत्र
- विचार को बदलना सीखें
- मनन और मूल्यांकन
- जैन दर्शन और अनेकान्त
- आमंत्रण आरोग्य को
- जैन दर्शन : मनन और मीमांसा
- शक्ति की साधना
- जैन धर्म के साधना सूत्र
- महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र
- मुक्तभोग की समस्या और ब्रह्मचर्य
- नया मानव : नया विश्व
- अहिंसा और शान्ति
- महावीर का अर्थशास्त्र
- अध्यात्म का प्रथम सोपान : सामायिक
- अहिंसा तत्वदर्शन
- अतीत का बसंत : वर्तमान का सौरभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर का अर्थशास्त्र

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org